प्रकाशक—
रत्नाश्रम, आगरा।

मुद्रक:—
पं० चन्द्रहंस शर्मा 'वि
रत्नाश्रम द्वा० प्या० प्रि० वर्क्स,

१२२०

नाटक के पात्र

पुरुष

रामचन्द्र—अयोध्या के सूर्यवंशी राजा

लक्ष्मण, शत्रुघ्न } राम के भाई

जनक—राम के श्वसुर, मिथिला-नरेश

अष्टावक्र—वशिष्ठ के शिष्य

शम्बूक—एक शूद्र तपस्वी

वाल्मीकि—एक ऋषि

सौधातकि, दाण्डायन } वाल्मीकि के शिष्य

कुश, लव } राम के पुत्र

चन्द्रकेतु—लक्ष्मण का पुत्र

सुमन्त्र—सारथी

विद्याधर—देव विशेष

स्त्रियाँ

सीता—राम की पत्नी, जानकी

वासन्ती—सीता की सहेली वनदेवी

आत्रेयी—एक ब्रह्मचारिणी

कौशल्या—राम की माता

तमसा, मुरला, भागीरथी } स्त्री रूप में नदी विशेष

वसुन्धरा—पृथ्वी, सीता की माता

अरुन्धती—गुरु वशिष्ठ की पत्नी

विद्याधरी—देवी विशेष

दुर्मुख, कंचुकी, प्रतिहारी, लड़के, सैनिक आदि

स्थान—अयोध्या, पंचवटी, जनस्थान, वाल्मीकि-आश्रम

॥ श्री ॥

समर्पण

जिन का अश्रुत-पूर्व अनुग्रह वर्णनातीत है, जो मानव-शरीर
में प्रेम और दया के साक्षात् अवतार थे,
जिन से इस जन्म में तो क्या जन्मान्तर
में भी उऋण नहीं हो सकता,
उन्हीं वैकुण्ठ-वासी पवित्र-हृदय

श्री गुरुदेव

को

यह अकिञ्चन भेंट

सप्रेम सादर समर्पित है।

—सत्यनारायण

कालिदास को सुनाया तो उसे सुनकर वह अत्यन्त विस्मित हुए और आनन्दमग्न हो उसे माथे पर रख कर धन्य-धन्य कहने लगे। उन्होंने केवल प्रथम अंक के सत्ताईसवें श्लोक के अंतिम-चरण 'अविदित गतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्' में भवभूति को सूचित किया "एवं" पद के स्थान में "एव" पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। सुना जाता है कि उन्होंने इसे स्वीकार किया और अबतक उक्त श्लोक में यही पाठ चला आता है। इस मनोरञ्जक कथा में कोई बात असम्भव नहीं जान पड़ती क्योंकि इस नाटक की योग्यता ऐसी ही है कि शकुन्तला नाटक लिखने वाला भी उसे शिरोधार्य करे। साथ ही कालिदास की विशाल बुद्धि तथा निरभिमानता का भी अच्छा परिचय मिलता है।*

इस किम्वदन्ती के अनुसार बहुतेरे लोग भवभूति को कालिदास का समकालीन मानते हैं; किन्तु इसके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण हैं:—

१-प्रथम तो कालिदास की कीर्ति प्राचीनकाल से ही आबाल-वृद्धों को विदित है और भवभूति को केवल पण्डित लोग ही जानते हैं। यदि वह कालिदास के समय में हुए होते तो जिन लोगों ने शकुन्तला तथा विक्रमोर्वशी की प्रशंसा की है उन लोगों ने उत्तर-रामचरित और मालती-माधव की प्रशंसा भी की होती।

दूसरे कालिदास के समय की सरल स्वाभाविक रचना-शैली से भवभूति का रचना-क्रम बहुत ही भिन्न है।

---

* चिपलूणकर।

३—औचित्यविचार की प्रस्तावना के आदि के श्लोक में उसके रचयिता चतुर कवि ने (जिसका समय ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना निश्चित है) अपने से पूर्व अन्य कवियों का तो वर्णन किया है किन्तु भवभूति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।

४—भवभूति की भाषाशैली से उसका सातवीं शताब्दी में होना सिद्ध होता है, क्योंकि इस शताब्दी के साहित्यकार कवियों ने लम्बे लम्बे समासों की कृत्रिम रचना-प्रणाली को धीरे धीरे प्रचलित की थी जो उनके नाटकों में जहाँ-तहाँ पर लक्षित होती है। इसलिए शैली-क्रम के अनुसार भवभूति को कवि सुबन्धु, दण्डी और बाण की श्रेणी में परिगणित करना उस उसी समय के अन्तर्गत उसकी प्रवृत्ति को अधिक संकुचित जान पड़ता है। इन सब बातों से अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास के पीछे ही भवभूति हुए होंगे क्योंकि उस [illegible] कवि-कल्पना की [illegible] और [illegible] उनके पद [illegible] और [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] न होना कठिन है तब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में अधिक [illegible] [illegible] पड़ती है।

भवभूति

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुछ [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के पूर्व उनके ही [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

"सुरभिगन्धमुस्य सिद्धा "मूर्च्छितानिवर्तनवतावसानि" वाले नियम को भूलकर जब लोग किसी प्रचंड ग्रन्थकार की अवहेला किया चाहते हैं तब उस अपमान की घोर यन्त्रणा से व्याकुल हो कर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए आत्मप्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझता। भवभूति की भी यही दशा हुई होगी; आत्मकवित्व का उन्हें बड़ा दृढ़ विश्वास था, उनका यह सुदृढ़ निश्चय, निन्दकों की अवज्ञा व अपने ग्रन्थों की यथेष्ट ख्याति न होने से अथवा इस भय से कि कदाचित वे नष्ट न हो जायँ, किंचित् भी न हटा। अपने समय के लोगों की निन्दा से हतोत्साह न हो उन्होंने भावीकाल ही पर भरोसा रक्खा और "भविष्य में सत्कृति अभिनन्दित होगी" यह उन्होंने भविष्य कथन किया (चिप०) इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप उन्हीं का बनाया एक श्लोक उद्धृत किया जाता है:—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि* समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

(मालती-माधव नाटक)

अस्तु, इसमें यही प्रतिपादित हुआ कि ... आत्म-विषयक लेख दूषणार्ह नहीं हैं किन्तु ... आत्मश्लाघा न कह कर आत्मगौरव कहना ... होता है क्योंकि आत्मयोग्यता के ज्ञान पर ...

* पाठान्तर—"उत्पत्स्यतेममनुकोऽपि"

४. सुहृदता—चाहें कुछ भी उपकार न करें किन्तु वे अपने सुहृद को अलौकिक वस्तु समझते हैं। गद्‌गद् भाव से पुलित होकर आपने कहा है कि—

"कर कछ न करैं सउ सर्वदा; बसि समीप सब विपदा हरैं।
सुहृद जो बड़ें जासु जहान में, अवसि सो सिर जीवन-मूरि है ॥"
(६-५)

५. सहृदयता—कवि का प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की शृंगार, वीर, करुणादि जो भिन्न भिन्न वृत्तियाँ हैं वे उसे अत्यन्त सूक्ष्म एवं स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिएँ। उक्त भिन्न भिन्न वृत्तियों का विषय इन्द्रियगोचर होते ही कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और उस क्षुब्धता के आवेग में उसके मुख से जो बातें निकलती हैं वही यथार्थ कविता है। तात्पर्य यह है कि कवि का हृदय ऐसा होना चाहिए जिसमें भिन्न भिन्न मनोवृत्तियाँ पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो जाँय। यह नियम भवभूति की कविता में सर्वत्र चरितार्थ हो रहा है, उनका मन अत्यन्त निर्मल एवं प्रेमी है, वैसे ही स्वभाव नितांत सरल अथच गम्भीर होने के कारण जिस प्रसंग का श्लोक देखिये मानो रस उस से टपका पड़ता है। इनसे विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उत्तर-राम-चरित नाटक में राम-वासंती-सम्वाद, लव-चन्द्रकेतु-वार्त्तालाप तथा राम-लव-कुश-सम्मेलन आदि का वर्णन पढ़ना उचित प्रतीत होता है।

६. मन की शुद्धता—बहुतेरे यूरोपियन विद्वान संस्कृत कविता को यह दोष लगाते हैं कि उसमें शृंगार का उद्भव शुद्ध प्रेम रस से किया हुआ नहीं पाया जाता, किन्तु अधिकांश में यह काम-

चाटुकारी न करने के कारण अथवा वैसा करने को नीचता और अपमान समझने के कारण भवभूति राजाओं के कृपापात्र न बन सके। इनके संतोषी एवं उदार मन को पराधीन होकर विषयानुभव करने की अपेक्षा दरिद्रावस्था ही में स्वतंत्र रहकर अपनी कविता को निष्कलंक रखना अधिकतर अभीष्ट होता ऐसा बोध होता है। किसी राजदरबार से उनका यथावत् सम्बन्ध न रहने के कारण उनके मन की भावावस्था में कदापि अन्तर नहीं पड़ा और हम समझते हैं कि यही कारण है कि उनके शृङ्गारवर्णन में ऐसी अपूर्व कोमलता, औज्ज्वल्य तथा सुषमा दृष्टिगोचर होती है।

७. विद्वत्ता—अपने समय के बड़े बड़े पंडितों में उनकी धाक जमी हुई थी। पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्रीकण्ठपदलाञ्छनादि उपाधियों से तत्कालीन विद्वन्मण्डली द्वारा उनका मान किया गया था। उनकी रचना से भली भाँति स्पष्ट होता है कि वे व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदि शास्त्रों के अच्छे पारदर्शी थे। इस नाटक में स्थल स्थल पर विशदतापूर्वक उनके वेदान्तशास्त्र के ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वेद और अपूर्व लोकों के वर्णन से उपनिषदों पर उनका अधिकार विदित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि भवभूति अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान होगये हैं और इसी कारण संस्कृतसाहित्य में वे महाकवियों में परिगणित किये जाते हैं। इनकी लेखन शैली ही से इनका विद्याभिमान टपका पड़ता है।

८. सामाजिक विचार—और जैसे हिन्दू कवियों की भाँति इनका हृदय संकीर्ण नहीं था। इनके ग्रन्थों के पढ़ने मात्र से ही

कराया है। केवल रामचन्द्र जी ही प्रजा के सन्तुष्ट करने की चेष्टा में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत नहीं हैं (अंक १-१२) वरन् जिनके बुद्धिबल से राजकाज चलता था और जिनको किसी प्रकार के स्वार्थ साधने की कामना नहीं थी उन्हीं रघुकुल के आचार्य कुलगुरु वशिष्ट की राम के लिए आज्ञा थी कि:—

"तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन निज प्रमाद विहाय।
तज्जनित-यस-धन प्रचुर ही रघुवंस की प्रभुताय॥"

(१-११)

इनकी आज्ञा का श्री रामचन्द्रजी ने अक्षर अक्षर पालन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक सामाजिक समालोचकों की दृष्टि में राम का सीता-निर्वासन कार्य अमानुषिक प्रतीत होता है किन्तु यदि प्रजानुरंजन कर्त्तव्यकर्म की प्रधानता को—जिसका उल्लेख कवि ने राम के मुख से कराया है—निरपेक्ष भाव से विचारा जाय तो राम क्षन्तव्य हैं। लोकमत को उल्लंघन करने का संकल्प राम को स्वप्न में भी नहीं होता। राम जानते हैं कि जब राजोपचार प्रबल होता है तभी प्रजा कातर-कण्ठ से अपनी सच्ची सम्मति का उद्गार उगलती है। पीड़ित प्रजा की उस निस्स्वार्थ सम्मति के अनुसार कार्य करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

(तुलसीदास)

राजनैतिक विचारों में ऐसे धार्मिक विचारों का नियोजित करना युक्तियुक्त है या नहीं इसके निराकरण कार्य से इस विषय का विशेष सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहना

पड़ता है कि उस समय के राजाओं की शासन-प्रणाली उक्त प्रकार के गुण व दोष से (आजकल के समालोचकों की समझ में जैसा कुछ हो) अवश्य प्रयुक्त रहती थी। ऐसा संस्कार उनके हृदय में वंशपरम्परा से ही अंकुरित होता रहता था। उस समय की शिक्षा शैली ऐसा उपदेश देती थी।

जो लोग सती सीता के दुःख से कातर होकर राम को यह दोष लगाते हैं कि उन में मानसिक बल नहीं था क्योंकि ऐसी छोटी छोटी बातों में प्रजा को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उन्होंने इतनी उग्र उत्कण्ठा प्रकट की थी। ऐसा समझने वाले अपनी अनुदार आलोचना से महाराज मर्यादापुरुषोत्तम राम के अनुपम आत्म-त्याग के सौन्दर्य को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। राम स्वयं जानते थे कि सीता निर्दोष है और उन्होंने उस निरपराधिनी को देश निकाला देकर घोर घृणित कार्य किया है। उनके ही विचार में यह भाव विदित होता है और वह आत्म-ग्लानि की अन्तर्ज्वाला में कितना जलते थे यह पद पद पर प्रकट होता है। इन्होंने सीता निर्वासनजनित पाप का प्रायश्चित्त अपार विलापों से किया है। कवि ने तमसा के मुख से ठीक कहलाया है कि —

"उमड़ि पूर्ण तड़ाग जबै जल, तब निकासन तासु प्रतिक्रिया।
विपुल शोक-व्यथा-[illegible] तथा, रुदन धीरज को सदुपाय है॥"[1]

(३-२९)

---

[1] Give sorrow words the grief that does not speak
Whispers the over fraught heart and bids it break.
—Shakespeare

अस्तु जब हम कुल-कर्त्तव्य-पालन कसौटी पर राम के सीता निर्वासन-कार्य की परीक्षा करते हैं तो उनके अद्भुत आत्मत्याग और अनुपम धीर गम्भीर उदार भाव के अनन्त पारावार में उक्त अमानुषिक कलङ्क-कालिमा अनन्त बार धुल जाती है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है—कि प्रजानुरञ्जन कार्यों में राम को जी भरकर रोने का भी तो अवकाश न मिला। चाहे कैसे ही घोर शोक का समय हो राम ने कर्त्तव्य-पालन को ही प्राधान्य दिया है। जब उन्होंने सुना कि यमुना तट पर तप करने वाले तपस्वियों को लवणासुर ने सताया है तो राम सब रोना-धोना भूल गये और उस असुर के वध का प्रबन्ध करने में जा लगे। फिर एक ब्राह्मण ने एक मरा लड़का राजद्वार पर पटक कर ज्योंही दुहाई मचाई और [illegible] हुई उसी समय राम ने अपने शोक को भूलकर शम्बूक के मारने के लिए प्रस्थान कर दिया। इन बातों से भलीभाँति प्रकट है कि प्रजाहित के लिए राम अपने सुख-दुःख की कुछ भी परवाह न करते थे।

राम का चरित्र-चित्रण [illegible] इस बात का साक्षी है कि सीता को निकालने से राम की कितनी दुर्गति थी, किस धर्मसंकट में फँस कर राम को यह काम करना पड़ा था। आधुनिक समाज-सुधारकों के शुष्क वाद-विवाद तथा व्यर्थ तर्क-वितर्क में पड़ कर देश-काल की परिवर्तित दशा का [illegible] छिद्रान्वेषण करना अपने प्रधान लक्ष्य से भटक जाना है। भवभूति के राम ने अपने जीवन में 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि

कुसुमादपि को चरितार्थ किया है। कवि-कल्पित उनका वि:
स्वाभाविक है। राम धीर हैं, पराक्रमी हैं, प्रजापालक हैं—लेकि
सबसे पहले आदर्श पुरुष हैं। धीरोदात्त ॐ नायक के सम्पू
लक्षणों ने उनमें आश्रय पाया है। नेता × के सब गुण रामचन
जी में विद्यमान हैं और इन्हीं नमूनों को सामने रखकर भवभू
ने राम का चरित्र-चित्रण किया है। तथापि भवभूति वासन्ती
मुख से सीता-निर्वासन के लिए राम पर कटु तथा नम्र संकेतों
निकट चीत्कार कराता है। यह सब कुछ करते हुए भी विच
भवभूति अपना कवि-कर्त्तव्य पालन करने में कहाँ तक सफल प्रय
हुए हैं, इसका निर्णय केवल विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता है

१०. प्रकृति-वर्णन—जिन किन्हीं वस्तुओं का वर्णन कर
हो उनका साक्षात् अनुभव कवि के लिए आवश्यक है। बड़
से बड़े बड़े कवियों में भी प्रायः यह सामर्थ्य नहीं पाई जाती।
उनके वर्णन यथार्थ बन सकें अर्थात् उन पदार्थों के साक्षात्
में जो कल्पना मन में आती है वह केवल वर्णन पढ़ने से मन
कदापि आविर्भूत नहीं होती। जब इन वर्णनों की ही ऐसी द

ॐ महा सत्त्वोति गम्भीरः क्षमावान विकत्थन।
स्थिरो निगूढाऽहंकारी धीरोदात्तो दृढव्रत.॥
× नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षप्रियम्वदः।
रक्तलोक. शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बिद्धुत्साह स्मृति प्रज्ञा कलामान समन्विता.।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्चधार्मिकः॥

है तो इनकी प्रतिकृति में यथार्थता और रस कहाँ तक रह सकते हैं इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं (इस प्रकार की त्रुटि से भवभूति के नाटक अधिकांश में दूषित नहीं हैं। केवल इनका ही नृष्टि-विभव-वर्णन आधुनिक अँगरेज कवियों की सजावट के ढंग पर है)। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि संस्कृत के और कवियों ने सृष्टि-पदार्थों का वर्णन लिखा ही नहीं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन कवियों का ढंग निराला है, उनके वर्णन में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं निश्चित बातें कभी छूट नहीं सकतीं। जिन्हें पढ़ कर यह शंका स्वभावतः उत्पन्न होती है कि उनमें से बहुतेरों ने अपने वर्णित प्रकृति-दृश्यों का स्वयं अनुभव कदापि नहीं किया, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ कर वैसा लिख दिया है। किन्तु भवभूति ऐसे कवियों में न थे। उपमा और प्रकृति वर्णन यद्यपि कालिदास का सबसे अनूठा है किन्तु वर्णन में उस वस्तु का रूप आँख के सामने खड़ा कर देना भवभूति ही जानते थे। उत्तर-राम-चरित में आश्रम,तपोवन,पर्वत, गुल्म-लता आदि का ऐसा अद्भुत वर्णन किया गया है जैसे यह सब पढ़ने वाले के सामने ही हैं। मालती-माधव में स्मशान का वर्णन पढ़ने से रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। उन्होंने जो स्थान स्थान पर प्रकृति के उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हें कवि-कपोल-कल्पित व अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नहीं है। इससे यही प्रकट होता है कि प्रकृति देवी के भाँति २ के मनोहर दृश्यों को अवलोकन करने का भवभूति को प्रकृतिजात परमोत्साह था। दण्डकारण्य, जनस्थान, पञ्चवटी, गोदावरी नदी के स्वच्छ स्वाभाविक वर्णन

जैसा उत्तररामचरित के [illegible] से प्रगट है वैसा ही [illegible] भवभूति की कविता में, [illegible] है। इनकी विविध रचना से [illegible] कहते हैं। "[illegible] भवभूति [illegible]" [illegible] है। इनका [illegible] संस्कृत कवि से कम नहीं है और [illegible] भवभूति संस्कृत के सब कवियों से [illegible] है, [illegible] प्राचीन काल से ही [illegible] है। इनकी रचना में जो ओजस्विता और भाव की [illegible] है [illegible] इनकी कविताओं को पढ़ते हैं। [illegible] भवभूति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भवभूति को [illegible] [illegible] से की है।

---

* पं० [illegible] भट्ट

प्रस्तावी कृतियाँ, मालती०, वीर०, उत्तररामचरित तथा लम्बे लम्बे प्रसन्न प्रभावशाली समासों से सुसज्जित हैं। भवभूति के नाट्य-पात्र सदैव और स्वतंत्र भाव हैं और उनके नाटक उस समय के सामाजिक भाव, रीति-नीति, आचार-विचार और पारस्परिक व्यवहार के जैसे के तैसे प्रतिबिम्ब हैं। उनके द्वारा ही तत्कालीन हिन्दू सामाजिक परिस्थिति, भाव और सभ्यता का सच्चा पता चलता है। कालिदास के पश्चात् होने से भवभूति को उनके भावों तथा विचारों का अनिवार्य अनुकरण करना पड़ा है, किन्तु वह अनुकरण भी कहीं कहीं बहुत बढ़िया हुआ है। जिस बात को कालिदास व्यंजना में प्रकट करते हैं वहाँ भवभूति द्वारा वाच्यार्थ में कथन की जाती है। कालिदास पर बहुधा शास्त्रीय नियमों का अंकुश नहीं है किन्तु भवभूति पूर्णतया यथावत् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं। उनके अतिथियों का स्वागत मधुपर्क बिना होता ही नहीं—कालिदास के नाटकों में विदूषक महाराज मिलेंगे जिनकी उपहासजनक बातों से सामाजिकों को सामना पड़ता है, किन्तु भवभूति के नाटकों में विदूषक का नाम भी नहीं ÷ प्रत्युत दुर्मुख को भी कर्तव्यपरायण होना पड़ता है। वास्तविक घटनाक्रम के सामाजिकों की रक्षा के निमित्त कदाचित् भवभूति ने ऐसा किया है। कालिदास के कोई भी नायक नायिका, दाम्पत्य विधान के उत्तम उदाहरण आदर्श पति पत्न

÷ कदाचित् भवभूति के समय में ऐसे नाटकों के प्रचारविशेष के कारण उपहासजनक बातों को छोड़ लोग प्रायः गम्भीर रहा करते होंगे।

न दोनों ही अज्ञात् भाव से अपने पुत्रों से मिल कर मुग्ध हो जाते हैं और दोनों ही नाटकों के नायक महर्षियों के आश्रम में उनकी कृपा से अपनी अपनी स्त्री पा लेते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उधर तो महाभारत के एक रूपक को लेकर कालिदास ने शकुन्तला नाटक की रचना कर संसार को मोहित कर दिया, इधर कालिदास के पश्चात् कालीन भवभूति ने रामायण से उसी प्रकार का एक रूपक ले उत्तर-राम-चरित को रच उक्त कवि को शकुन्तला का जोड़ उपस्थित कर दिया और इस भाँति प्रसिद्धि प्राप्त की। अस्तु यदि भवभूति का लक्ष्य उत्तर-राम-चरित बनाते समय शकुन्तला रहा हो तो असंभव नहीं है।

नाटक के आरम्भ में एक ब्राह्मण आकर सभा को आशीर्वाद देता है, इस आशीर्वाद को नान्दी कहते हैं। फिर नाटक खेलने वालों का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने कुछ कह कर कहता है कि आज अमुक नाटक का खेल किया जायगा इस बातचीत को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक के भागों को अंक कहते हैं और जो कोई अधिक प्रसंग किसी अंक के आदि में आता है वह विष्कम्भक अथवा गर्भाङ्क कहलाता है। नाटक के पढ़ने वालों की सुगमता के लिए कुछ बातें कोष्ठकों में लिखी जाती हैं; जैसे—

(नेपथ्य में)—इसका मतलब यह है कि यह बात कहीं परदे के पीछे से सुनाई पड़ती है जिसका कहने वाला रंगभूमि पर उपस्थित नहीं है, इस चिह्न का प्रयोग उस समय होता है जब नाटककार किसी बात को बिना रंगभूमि पर खेले दर्शकों को ज्ञात करा देना चाहता है।

संकेत

(आप ही आप) अथवा (अलग) का अर्थ है कि पात्र इस प्रकार बोलता है मानो दर्शक तो सुन रहे हैं दूसरे नाटक खेलने वाले नहीं सुन रहे हैं।

जहाँ लिखा है कि अमुक का प्रवेश, अथवा अमुक आता है जाता है इत्यादि इससे जानना चाहिए कि वह पात्र रंगभूमि प आया अथवा वहाँ से नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे चला गया।

धौलपुर, आगरा
७-१-११

—सत्यनारायण

॥ श्री हरि ॥

उत्तर-राम-चरित नाटक

[नान्दी]

बन्दौं श्रीमद्वाल्मीकि कवि-मग दरसावन ।
रामचरित-मिस-नव-रसाल-पिक श्रुति-जग-पावन ॥
पुनि दोउन मनहरनि रसिक-वर-हृदय-विलासिनि ।
करुण-धरनि-जय बरनि विविध विज्ञान विकासिनि ॥
श्री शब्द-मूर्ति-धर-ब्रह्म की जो मंजुल माया सबै ।
धन धवल-बानी दरसै जिन मनानुग अद्भुत सबै ॥ १ ॥

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र:—बस, अधिक विस्तार का काम नहीं, आज भगवान कालप्रियनाथ की यात्रा के शुभ उत्सव पर सर्व सज्जन महोदयों को विदित हो कि काश्यपकुल-उजागर, सकल-विद्या-सागर, जननि जातुकर्णी के पवित्र गर्भोत्पन्न, श्री-कण्ठ-पदलाञ्छन जिनका नाम भी भवभूति प्रसिद्ध है—

वचन के बस जासु सरस्वती,
करति काज मनो निज भामिनी ।

मुदित [illegible] भानु कवीन्द्र के,
विमल उत्तर-राम-चरित्र कौं ॥ २ ॥

[इधर उधर देख कर] अच्छा, तो, अब मैं कार्यवश अयोध्यावासी और महाराज श्री रामचन्द्र के समय का [illegible] जाता हूँ। [चारों ओर देख कर] अरे, क्या आजकल पौलस्त्य कुल धूमकेतु श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समय है? इन दिनों तो निरन्तर आनन्द-मंगल और गाने-बजाने की धूम-धाम मची रहनी चाहिए; फिर किस कारण से [illegible] हुए प्रकाशित घर और बाट [illegible] चौराहे शून्य दिखलाई पड़ रहे!

नट—(आकर) भाई बात यह है कि महाराज ने लंका युद्ध में सहायता करने वाले बन्दरों, राक्षसों तथा [illegible] के सम्बन्धि और [illegible] आगत [illegible] को जो राज्याभि[illegible] के उत्सव के लिए आये थे—बड़ी ही [illegible] कर दिया [illegible] इतने दिनों तक उत्सव रहा था।

सूत्र०—अच्छा, ठीक!

नट—और सुनो—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ३ ॥

सूत्र०—भाई, मैं विदेशी हूँ, इस लिए पूछता हूँ कि ये [illegible] कौन हैं?

नट—शान्ता जो सुन्दर सुता, दशरथ की गुन-माल।
दयी लोमपादहिं सदय, गोद धरन भुअपाल ॥ ४ ॥

इसका विवाह विभाण्डक के पुत्र श्रृङ्गीऋषि के साथ हुआ, जो आजकल बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे हैं, इसी कारण पूर्ण गर्भवती जानकी जी को छोड़ सब बड़े बूढ़े वहाँ गये हैं।

सूत्र०—इसमें हमको क्या ? हम तो चारण हैं, चलो राजद्वार पर चलें और निज वंशपरम्परानुसार राजा की विरुदावलि बखानें।

नट—तो वहाँ के लिए कोई बढ़िया स्तुति सोच लीजिये जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो।

सूत्र०—सुनो भाई !

धूक चावरी में कबहुँ, करनी चहिये नाहिं।
सब प्रकार निरदोष कहु, को पदार्थ जग माहिं ॥
कुटिल मनुज सों रहि सकत, भला कौन निस्संक।
मदुवनिता कवितान में, जो नित लखत कलंक ॥

नट—अजी, ऐसों को तो अति कुटिल कहना चाहिए क्योंकि—

सती सियहु को दोस दै, जन जब करत अनीति।
अपर तियन की जगत में, को करिहैं परतीति ॥
केवल निन्दा मूल तिन, राछस घर को बास।
अनल-परीच्छहु में सनक, नहिं लोगनि बिसवास ॥ ६ ॥

अंक १

(स्थान—तपोवन)

[राम और सीता पत्थर पर बैठे दिखाई पड़ते हैं]

राम—देवि! सीता, इतना खेद क्यों करती हो! आपके लिए [illegible] हो इन लोगों के [illegible] को नहीं सह सकते, किन्तु कहा है—

[illegible] के [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ; किन्तु आपके लोगों के विरुद्ध [illegible] होता ही है।

राम—हाँ, आपने [illegible] ठीक है। [illegible] [illegible] ही प्रधान है, इसी कारण [illegible] [illegible] कारणों को छोड़कर [illegible] [illegible] करते हैं।

[बच्चों का प्रवेश]

सी॰—और रामचन्द्र, [इतना कहते हुए के नीचे [illegible]] महाराज!

जिन कुल सविता वंस-प्रवरतक हम आचारी।
तिन राजनि की वधू नन्दिनी तुम सुकुमारी ॥९॥

इस कारण और क्या आशिष दें, बस भगवान तुम्हें वीर-जननी बनावें, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

राम—इसके लिए हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं, क्योंकि—

निरखि अर्थ कहँ निज बैन कों,
सकल लौकिक साधु बनाइकें।
विमल मानस आदि ऋषीनु के—
बचन कों अनुधावत अर्थ है ॥१०॥

अ०—और भगवती अरुन्धती, देवी शान्ता, महारानी माताओं ने बारम्बार यह कहला भेजा है कि आजकल गर्भिणी सीता का मन जिस किसी वस्तु पर चले वह अवश्य ही उपस्थित की जाय, उसमें कदापि देर न करना।

राम—जो कहती हैं सो सब किया जाता है।

अ०—तुम्हारे नन्दोई और माताओं ने यह कहला भेजा है कि बेटी, तू पूरे दिनों से है इसी कारण तुझे हम अपने साथ नहीं लाये, वत्स रामचन्द्र को भी तेरा जी बहलाने के लिये यहीं छोड़ दिया है, इसलिए हे आयुष्मती! लाल से जब तेरी गोद-भरी पूरी होगी तभी हम तुझ से मिलेंगे।

राम—[हर्ष और लाज से मुसकराकर] ऐसा ही हो, कहिए भगवान वशिष्ठजी की कुछ मेरे लिए भी आज्ञा है।

अ०—इसे भी सुनिये—

जिन न कहहि रघु-जनक को, गुरु सम्बन्ध पवित्र।
करत-धरत जहँ सुमन, भावुहि निरखनिय ॥१७॥

सीता—और देखिये, ये चारों भाई सगुन साधन से मुण्डन कराकर विवाह का कंकन बाँधे उपस्थित हैं; अहा! ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोग जनकपुर में बैठे हैं और यह वही समय वर्त रहा है।

राम—सुमुखि! मंगल समय यह, हँसत रहो परनीत।
गौतम-देव-प्रसून जब, तेरो पानि पुनीत॥
कंकन-भूषित जनु मनहु, उत्सव को अवतार।
मदन करत प्रफुलित कियो, मोकों चारहिंबार ॥१८॥

ल०—देखिये आप हैं, ये श्री माण्डवी हैं और ये वधू श्रुतकीर्ति हैं।

सीता—और यह दूसरी कौन है?

ल०—[लज्जा से मुसक्या कर आप ही आप] महारानी सीता अब उर्मिला को पूछ रही हैं, तो किसी बहाने यह बात उड़ानी चाहिए। [प्रकट] श्रीमती, देखने योग्य इधर है, आइये, भगवान परशुराम जी के दर्शन कीजिये।

सीता—[भय से घबड़ाकर] इनके देखने से तो भय लगता है।

राम—ऋषि महाराज को नमस्कार है।

ल०—महारानी देखो देखो, यह महाराज ने ऋषि के धर्म ····

राम—[क्रोध से डपटते हुए] अजी, अभी तो बहुत देखने को पड़ा है, और ही कहीं दिखलाओ।

सीता—[स्नेह और आदर से देखकर] आर्यपुत्र, इस विनय बड़ाई

सीता—ये विश्व की वंदना योग्य पुण्यसलिला भागीरथी यहरही हैं ?

राम [चित्र देख कर] माता भागीरथी. आप रघुकुल की कुल-देवी हो, मैं प्रणाम करता हूँ—

खोजत सगरसुत यज्ञ-हय,
महि भेदि पातालहिं गये।
मुनि कपिल-कोप कराल सों,
जरि छार सब छिन में भये।
अति कठिन तप तपि तब भगीरथ,
सलिल अघहर लाइकें।
उद्धार कियो पुरखान को,
भगवति दयानुग पाइकें ॥२२॥

सो हे जननी, आप अरुन्धती के समान वधू सीता पर सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना।

ल०—यह वही श्यामघाट है जो भरद्वाज के बतलाये हुए चित्र-कूट के मार्ग में कालिन्द्री के तट पर मिला था।

सीता—आर्यपुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आपको स्मरण है ?

राम—भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है—

जब मारग के स्रम व्यापन सों, सिथिलाइ के आलस ओइ गई।
मिलिलौ मुरझाई मृनालिनि-सी, बल-हीन पसीननु भोइ गई।
कछु मेरे तबै परिरम्भन सों सुठि-अंग-हराहरि खोइ गई।
सुख मानि प्रिया ! यहँ याही घरी, हियरा लगि मेरे तू सोइ गई॥

ल०—अब यहाँ से विन्ध्याचल के बन का आरम्भ हुआ है, वह देखिये, विराध के संग आपका संग्राम हो रहा है।

राम—कंदरि-कलगंजन बिपुल, मदयुत कलगान।
जल भर हल जिनके झरने, ये वह श्री हनुमान ॥२८॥

सी॰—आर्यपुत्र! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर गान कर रहे हैं; और जहाँ के वृक्ष नीचे, मूर्छित दशा में परिमित कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिनका केवल प्रभाव-सौन्दर्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सँभाल रहे हो, दिखाये गये हैं।

ल॰—मदकल युक्त कुसुमित गिरि को माल्यवन्त गिरि जान।
जहुँ शिखि-नर्तित नवल घनश्याम हृदय ...॥

राम—विरमौ विरमौ तात! आगे अब, दुख हैं सह नाहिं।
मानहु अबहुँ सिय-विरह-संयुत लागत दुख उर माहिं॥

ल॰—यहाँ से आगे आर्य के और कपि राक्षसों के अनगिनत अद्भुत कार्य क्रमपूर्वक खिंचवाये गये हैं; किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थक गई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ विश्राम कर लीजिये।

सी॰—आर्यपुत्र! इस चित्रदर्शन से मुझे गर्भिणी की इच्छा उत्पन्न हुई है, कहिये तो कहूँ।

राम—अवश्य कहो।

सी॰—मेरे मन में आती है कि एक बार फिर भी सघन वनों में विहार करूँ, और भगवती भागीरथी के पवित्र निर्मल शीतल गम्भीर जल में डुबकी लगाकर नहाऊँ।

राम—वत्स लक्ष्मण!

सुख है अथवा दुःख सो, निहचै कैहति नाहिं।
मद, प्रबोध निद्रा किधौं, विष फैल्यो तन नाहिं॥
हरि कबहुँ भ्रम अंतर पट, चित्तहि देत भ्रमाय।
फेर कबहूँ करि ताहि थिर, देत प्रमोद जगाय॥
मोहन करत निज निज विषय, इन्द्रिय-गन असमर्थ।
अद्भुत गूढ़ रहस्य जे, समुझि परत नहिं अर्थ॥३५॥

सीः—(हँसकर) आप का सर्वदा अनन्य एकरस प्रेम मुझ पर रहा है इस से बढ़कर और क्या कहना चाहिए।

राम—सींचि सनेह के जीवन सों, करै सूखत हीय प्रसून सुखारी।
इन्द्रिन कों निज तृप्ति-सुधा, समुधा-तल पै बरसावत भारी।
पुलकित देत विनीत सबै, दुखमोचन अम्बुज लोचन वारी॥
धीननि कों सुखदायक ज्यों, त्यों त्यों मन हैन रसायन प्यारी॥३६॥

सीः—हे प्रियम्वदा! अब मैं सोऊँगी।

(सोने के लिए इधर-उधर स्थान ढूँढ़ती है)

राम—अजी तुम क्या ढूँढ़ती हो—
फैल्यो ब्याहघरी सों सदा बन गेह में नेह निबाहन हारो।
बालपने और जौवन में पुनि तोहिं सनेह सुभावन वारो॥
जाहि लख्यो अपनेहु नहीं अपने मन में कबहूँ पर न्यारो।
राम की ताही भुजा को सिरहानो लेउ लगाइ अनन्दित प्यारी॥३७॥

सीः—(नींद का नाट्य करती हुई) ऐसे ही है, आर्य पुत्र! ठीक ऐसे ही है।

राम०—क्या प्रियम्वदा गोद में सो गई। (स्नेह से देखकर)

गृह की यह गृहलक्ष्मी, दृगन सुधामय साज।
अमृत सलाई सुभग यह, इन नयनन के काज॥
तन परसन ऐसी लगे जनु चन्दन रसधार।
यह भुज सीतल मृदुल अब, आनँद मुक्तियन हार॥
कछु न जाको लगत प्रिय, जहाँ न सुख-संजोग।
किन्तु दुसह दुख को भरयो, केवल जासु वियोग॥३८॥

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—उपस्थित है महाराज!

रा०—अरे कौन?

प्र०—दुर्मुख आपका गुप्तचर।

रा०—(आप ही आप) दुर्मुख तो रनवास का सेवक है, उसे तो हमने नगर के लोगों का भेद लेने को भेजा था (प्रगट) अच्छा आने दो।

(दुर्मुख का प्रवेश)

दु०—(आप ही आप) हाय महारानी सीता के विषय में ऐसे अनाचार को, जिसे सपने मे भी विचारने से पाप लगता है भगवान रामचन्द्र से कैसे कहूँगा! बिना कहे बनती भी नहीं, क्या करूँ मुझ अभागे का तो काम ही यह है।

सीता—[स्वप्नावस्था में विलाप-सा करते हुई] हाय प्यारे आर्यपुत्र कहाँ हो?

राम—ओहो ! चित्र देखने से जो उत्कण्ठा हुई उसे बढ़ाने वाली मेरी ही विरह-भावना सपने में भी प्यारी को चैन नहीं लेने देती ।

[स्नेह से सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए]

सुख-दुख में नित एक, हृदय का प्रिय विराम थल ।
सब विधि सों अनुकूल, विमद लच्छन सब अविचल ॥
जासु सरसता सकै न हरि, बयहूँ जरठाई ।
ज्यों ज्यों बाढ़त सघन, सघन, सुन्दर सुघराई ॥
जो अवसर पै संकोच तजि, परनत दृढ़ अनुराग सन ।
जग दुरलभ सज्जन प्रेम अस, बड़भागी कोऊ लहत ॥ ३१ ॥

दु०—[आगे बढ़ कर] महाराज की जय हो !

राम—कहो क्या समाचार लाये ।

दु०—सब नगरवासी आपकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि हम लोग इनके सुखद सुराज्य से बड़े महाराज दशरथ को भी भूल गये ।

राम—यह तो बड़ाई हुई, दोष भी तो कुछ कहो जिनसे उनके दूर करने का उपाय किया जाय ।

दु०—[आँसू भरके] सुनिये महाराज [कान में कहता है] ।

रा०—हाय ! यह कैसा असह्य वचन वज्रपात है "

[मूर्छित होते हैं]

दु०—धीरज धरो, महाराज ! धीरज धरो !

सुनहिं सो यह जग हेतु, सिय सब विधि पावन।
ते सुनती यहुँ [illegible] [illegible] [illegible]॥
ते सुनतीं सो लोग, [illegible] [illegible] [illegible]।
किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥१२॥

[दुर्मुख से] दुर्मुख तुम लक्ष्मण से जाकर कहो कि तुम्हारे नये महाराज राम की यह आज्ञा है [कान में कहते हैं]।

दु०—केवल दुर्जनों के कहने से यह आपने क्या ठान लिया है. इससे तो आप पर कलंक लगेगा; महारानी, अग्नि-परीक्षा में भी विशुद्ध प्रमाणित हो चुकी हैं और फिर आजकल तो इनके गर्भ में पवित्र रघुकुल के मंगल की स्थिति है. यह भी विचार करना होगा।

राम०—अरे मूर्ख, भला प्रजा के लोग दुर्जन किस प्रकार हो सकते हैं—

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१३॥

इस से [illegible]।

दु०—हाय महारानी!

[जाता है]

राम—हाय! मैं निष्ठुर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]!
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

अब देखें दशा अपराध बिना तिहि सीय को हाय ये कैसी भई।
जमराज के आनन दैन चहौं जनु मैना कसाई को सौंपि दई ॥४०॥

तो फिर हाय, जिसके छूने से भी पाप लगता है, ऐसा मैं अधर्मी, देवी को छूकर भी क्यों दूषित करूँ।

(सीता का सिर धीरे धीरे उठा कर अपना हाथ खींच के)

भोरी प्रिया मोहि छाँड़िदै मैं अति अधम चंडाल हूँ।
देख्यो न होगो अम कहूँ अरु ना सुन्यो होयो कहूँ॥
लखि उपरी ब्यौहार मम श्रीखण्ड के धोखे परी।
दुरभाग अग्र विष विटप सों अबला वृथा लिपटी अरी ॥४१॥

(उठकर) हा! आज पृथ्वी लौट गई, राम के जीवन का प्रयोजन नष्ट हो गया, अब जगत् सूना उजाड़ जंगल-सा लगने लगा, यह संसार असार है, शरीर भी अपने लिए बोझ हो गया है, कोई आश्रय भी तो नहीं रहा, किंकर्तव्यविमूढ़ हूँ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ अथवा यों कहना चाहिए—

जगत में जिन भोगन को बिधा,
बस मिल्यो यह जीवन राम को।
मरम-भेदक सायकु सों जख्यो,
सकत ना कढ़ि चेतन चेतना ॥४२॥

हा जननी अरुन्धती! हा भगवान वशिष्ठ! हा विश्वामित्र! हा पवित्र पावक! हा देवी वसुन्धरा! हा जनक!

हा पिता ! हा माता ! हा परमोपकारी लंकाधिपति विभीषण ! हा प्यारे सुहृद सुग्रीव ! सौम्य हनुमान ! हा सखी त्रिजटा ! आज राम पापी ने तुम सब को धोखा दिया और तुम्हारा सब का निरादर किया। हाय अब मुझे इनके नाम लेने का भी अधिकार कहाँ है; क्योंकि—

मलरहित अनन्य । ज्योतिर्विद है परिपन्य ॥
वहँ मैं कृतघ्नकृतंम । हत सूर्यवंश-अवतंस ॥
मम लेतु जो कुछ नाम । मम जिहि दुर्जन सज्जन ॥
प्रभु पतिन जिनके अंक । हा ! हा ! कहाँ महदंश ॥ ४८ ॥

जिनको मैं ने—

मानो सिसि के हिय मों लगी, जिनकी ओर नेह के पाद लगी ।
... रमन्ह हौं, कुम्हला सी मनो सुमन दुलरी ॥
मारे मैं ... ..., फिर पुरे के ... ।
जिनकी करे मोह ... ... ॥ ४९ ॥

[शोक के मारे अपने आप से आप] देवी ! देवी !!

कल्पित ... राम के हिय में ... ... का नहीं है—[रोते हैं]

[नेपथ्य में]

[दुहाई है महाराज की दुहाई है !"]

राम—देखो तो यह क्या है ?

[फिर नेपथ्य में]

नर किये जिनने अति शान्त,
    सहरम्य यमुना-तट-रम्य में।
तपस्-आश्रित ता ऋषि-पुंज कौं,
    शरन में रघुनन्दन राखिये ! ॥२०॥

राम—अरे क्या अभी तक राक्षसों का त्रास बना ही है, अच्छा तो अभी इस कुम्भीनसी के पुत्र को नाश करने के लिये रघुनामधन्य शत्रुघ्न को भेजूँ [कुछ चलकर और फिर ठहर के] हा देवी, तुमको कैसे अकेली छोड़ूँ। भगवती भूतधात्री तुम अपनी प्यारी जानकी को देखती रहना, तुम्हें सौंपता हूँ।

जनक के रघु के वर वंश कौं,
    सतत जो सब मंगलदायिनी।
सहजही लतिका जिहि कीर्ति की,
    सुत सुता यह सोई वसुन्धरे ॥२१॥

(जाते हैं)

सीता—(सपने में) हाय प्यारे प्राणनाथ आप कहाँ हो ? (उठ कर) हाय हाय बुरे स्वप्न से जागी जाकर दुःख में मैं आर्यपुत्र को पुकार रही हूँ, हाय धिक्कार ! धिक्कार !! जो मुझे अकेली को सोते छोड़ वह चले गये अच्छा देखा जायगा फिर मिलने पर जो मैं अपने वश रही तो उनपर बिना कोप किये न रहूँगी। अरे कोई बाहर है ?

[दुर्मुख का प्रवेश]

दु०—देवी, कुमार लक्ष्मण ने कहला भेजा है कि रथ सज गया, श्रीमती आकर उस पर विराजमान हो जावें।

सी०—अच्छा मैं चलती हूँ, पर चलने से गर्भभार काँपेगा इसलिए रथ को धीरे धीरे चलाना।

दु०—इधर से आइये, महारानी इधर से चलिये।

सी०—मेरा हाथ जोड़ प्रणाम;

ऋषिमुनिवृन्दन कों, जे पर कारज करत दया के धाम।
औ रघुवंशमान्य-कुल-देविन, जे रघुकुल घटकाम॥
आर्यपुत्र-पदपद्मनि, जे मम सुख-सर्वस्व ललाम।
सब गुरुजन हित, जिन आशिष सों पावत सुख अभिराम॥२३॥

[सब जाते हैं]

अंक २

अथ विष्कम्भक

[नेपथ्य में]

[तरङ्गिनी जी आपका स्वागत है !]

पथिक के वेश में तरङ्गिनी का प्रवेश)

त०—अहा, यह तो वनदेवी है जो फल फूल और पल्लवों का अर्घ बनाकर मेरे लिये लाई है।

[वनदेवी का प्रवेश]

व०—[अर्घ देकर]

भोगौ पधारयि या वन कौं, तव दर्श मिले धनि भाग हमारो।
पुण्य घनेनु सों पावन है, जग पावन सज्जन-संग-सहारो॥ *
छाँहरि में बिरमाय पियो अब बारु, मुनीनु के जोग पियारो
कंद फरहार खाइये जू अरु और की आ, सब भाँति तिहारो।

त०—अहा क्या कहना है—

---

*निज रुचि अनुसारा भोगहु सारा, वन यह धनि मम भागे
सज्जन सतसंगा धरम प्रसंगा, मिलत सुकृति जो जागे।
तरु छाँह सुहावन मृदुजल पावन, मुनिजन भोजन जोई
फल या कन्दा सब स्वच्छन्दा, बरतहु निज मिन सोई।

कुसुम मिसवृन्दि, विर्त मधुर्ग, कलियानिमों चारु विचार करावैं।
वदंचनि कलिन्दिम मिल नई, मनि मंगल मोद मई मन भावैं॥
रस एक अपार विहार करैं, कुल छिद्र बिना, अघनाश मनावैं।
इमि सज्जन-पुण्य-चरित्र महाँ कहुँ चोर विर्ले करमा करमावैं॥२॥

(दोनों बैठती हैं।)

द:—कृपाकर बतलाइये तो आपका शुभनाम क्या है?

आ:—मुझे लोग आत्रेयी कहते हैं।

द:—आर्ये आत्रेयी! अच्छा तो फिर आपका आना यहाँ से हुआ और इस दण्डकारण्य में विचरने से आपको क्या प्रयोजन है?

आ०—या वन के निकट सुभग, अगस्त्यादि मुनि पुञ्ज।
सुन्दर [illegible] लाल की कुञ्ज।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

द:—[illegible]
[illegible]

[illegible]

बितरन गुरु इक सम करत, बुध मूरख कौं ज्ञान।
करत न, हरत न कछुक तिन, बोध शक्ति परिमान॥
किन्तु समय परिनाम के, अन्तर विपुल लखात।
रहत मूढ़ के मूढ़ इक, अन्य चतुर बनिजात॥
जिमि दिनेश सम भाव सौं, नभ मैं करत प्रकाश।
पूरन प्रति थल पर परत, तासु किरन आभास॥
मनिमंडल समरथ सदा, बिम्ब ग्रहन के माँहि।
पैं माटी के ढेल कहुँ, प्रतिबिम्ब दीसत नाहिं॥४॥

JAIN L...
BIKANER

व०—बस यही चिह्न था?

आ०—और भी है।

व०—वह और क्या है?

आ०—एकदिन मध्याह्नकाल में वह महर्षि महाराज तमसा नदी के तीर पर गये, वहाँ देखा कि आनन्द विचरते हुए क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को व्याध ने मार डाला है. इसी समय अकस्मात् ऋषि के मुख से नीचे लिखे आशय की स्पष्ट, दोष रहित, पूर्वापर सम्बन्ध युक्त, मधुर अनुष्टुप छन्द के रूप में वाग्देवी का प्रकाश हुआ।

"प्रेमभरी अति चाह सौं, मदमाती सानन्द।
क्रौंचनि की जोरी फिरत, विहरत औ स्वच्छन्द॥
हनि तिनमें सौं एक कौं, कियो परम अपराध।
जुग जुग लौं तोहि ना मिलहि, कबहुँ बड़ाई व्याध॥"

व०—अरे! यह तो वेद से भिन्न नये छन्द-का-सा आविष्कार है!!

[illegible] निरूपित हुए हैं।

[illegible]—[illegible] हुए हैं।

[illegible]—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]—[illegible]

आ०—हे कल्याणमयी अब तो मैं जाना चाहती हूँ।

वा०—अच्छा अब दिन चढ़ आया है, देखिये—

जहाँ घोंसला-निकुंज माहिं के कपोत-पुंज,
 खुटकबढ़ैया थके कूँजन सुनावहीं।
घौंहरि में छाल जिनकी कुरेदि कीरनि कौं,
 चौंचनु निकारि व्यात सगा दरसावहीं।
जबहीं सुजातै गज-मण्डल पीड़िनि सों,
 टपकि पसीजें जित कुसुम सुहावहीं।
ऐसे चारु कुमद्रुम फूल बरसाइ मानों,
 गोदावरी पूजि तासु गुन-गान गावहीं॥९॥

(इति विष्कम्भक)

[स्थान दण्डक वन]

(पुष्पक विमान में बैठे हुए खड्ग हाथ में लिए श्रीराम का प्रवेश)

रे दच्छिन भुज आज। द्विज सिसुहिं ज्यावन काज।
अब यह कृपान सम्हार। कर सूद्र मुनि पै वार॥
अति दुसह गर्भहिं धारि। बिन बिकल जनक-कुमारि।
मैं छाँड़ि जिहि डर नाहिं। तिहि बिजन बन के माहिं॥
सो तजत नाहिं सकुचात। ता राम को तू गात।
तो मधि कठोर कुगंम। किमि करै दया को मर्म॥१०॥

(प्रहार करके) अब तो निर्दय-हृदय राम के सदृश कर्म हुआ और ब्राह्मण का पुत्र भी जी उठा!

(शम्बूक का दिव्य पुरुष के रूप में प्रवेश)

दि० पु०—जय हो, महाराज की जय हो—

जन-देवहुतों रघुन जो नित, दंड निमित्त मोहीं दयौ।
सब ही लह्यो शासन सिद्ध यह, विपुल मम वैभव दयौ॥
शम्बूक शुभ पद नमन, माँगत मोहि भवभय-हारिनी।
सतसंग में यदि मृत्युहु मिलि जाय, सोऊ तारिनी॥१०॥

राम—दोनों बातें हमारे मन की हुईं. अच्छा भाई! तुमने बड़ा तप किया है; इसलिए—

हैं जहँ पुन्य आनँद लसत,
जो परम पुण्यसम्पत्ति धाम।
जहँ ध्रुव प्रकाश जहँ दिव्य ज्ञान,
वैराज लोक हो तोहिं प्राप्त॥११॥

शं०—आप ही के चरणारविन्द के प्रताप से यह महिमा प्राप्त हुई है. इस में तप का क्या फल है. अथवा तप ही ने यह महदुपकार किया है; क्योंकि—

आनन्दक प्रापक पुन्य प्रभो,
शरणागत, ढूँढ़ी, शरण्य, मिलो।
चिर पावन कानन मण्डितको,
जिह लागि करै मुनि-लोक-धनी।
इत सो हरि गोहन मोहि भये,
कबहुँ सब देखन प्रभु गये।
कहँ गूढ़ कपोल महीधरनी,
कहँ भीतरि तेंदुँ लेकरनी।

वस्तुओं से भरी, यह सघन विन्ध्याटवी उसी उन्माद पर्यन्त चली गई है।

हे [illegible] [illegible],
　　यहँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] कहुँ [illegible],
　　[illegible] [illegible] कहुँ [illegible]।
यहँ [illegible] [illegible] [illegible],
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] कहुँ [illegible],
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
है [illegible] [illegible] यहँ है [illegible],
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible],
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥११॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१०॥

[illegible] है [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है।
([illegible])

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥३१॥

[illegible] — [illegible] [[illegible]] [illegible] ।

[illegible] — [illegible] है ।
[जाता है]

[illegible] — [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]

दे जाती है, यहाँ कहीं निधन की प्यारी सखी [illegible] झलकती रहती है। हाय मुझ पर यह न जाने क्या आपत्ति टूट पड़ा, कुछ समझ नहीं पड़ता!

कैधौं [illegible] [illegible] [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
कैधौं [illegible] [illegible] के [illegible] को [illegible] [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं॥
कैधौं कोउ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
[illegible] न [illegible], [illegible] कोउ [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] हैं॥२१८॥

तो भी मैं अपने पूर्व परिचित स्थानों को देखे बिना नहीं रह सकता। [देखकर] अब तो यहाँ की अवस्था ही कुछ अन्यथा हो गई है—

[illegible] हो [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]
        [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
[illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
        [illegible] कोउ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
[illegible] के [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
        [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] हैं॥

भेजा है कि विमान से आपके उतरते ही मंगलाचार की सामग्री सजाये, स्वागत करने के लिये अत्यन्त प्रेम-पूर्वक, लोपामुद्रा, और सब आश्रमवासी श्रीमान् की बाट देख रहे हैं, सो हमारा आदर स्वीकार कर सबों का मनोर्थ पूरा कीजिये, पुष्पक-विमान बहुत शीघ्र जाता है, अश्वमेध के समय तक तो आप उससे अयोध्या पहुँच सकते हैं।

रा:—महर्षि जी की आज्ञा सिर माथे।

शं:—तो पुष्पक को फिर इधर फेरिये।

रा:—भगवती पंचवटी! बड़ों की आज्ञा-पालन करने की शीघ्रता में मैं तुम्हारी यथोचित सेवा किये बिना ही जो जा रहा हूँ, उसे थोड़ी देर के लिये क्षमा करना:—

शं:—देखिये, महाराज देखिये, यह वही क्रौंच गिरि है:—

जहँ कीचक-पुंज कुंज ललित कुटीर माहिं,
घोरत उलूक और, घोर घुघुआइकै।
मानु धुनि प्रतिधुनि सुनि कलकुल मूक,
अवसन्न होत ना डरात कहूँ धाइकै।
इतउत डोलत, सु खेलत हैं मोर, तिन-
मोर सुनि, ससत सरप सिमिटाइकै।
परम पुरान अँगरन पर चंदन है,
मारत स्वकुंडलनि निपटि घबराइकै ॥ २८ ॥

अंक ३

अथ विष्कम्भक

(तमसा और मुरला दो नदियों का आकाश में प्रवेश)

त०—सखि मुरले, कहाँ कैसे फिर रही हो।

मु०—प्यारी तमसा, भगवान अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने मुझे नदी-गोदावरी के पास यह कहने भेजा है कि तुम जानती हो कि रामचन्द्र जी जब से वधू सीता से अलग हुए हैं तब से—

अहत न बाढ़ गुहत हैं, हिय तन गंभीर।
अन्दर दिन दिन बढ़ति छिन, तहु अवत जब धीर॥
पुट पाक कुम्भ ज्यों, होत अहै धरि उर।
भीतर ही अंतर जरति, बाहिर कछु न लखात॥१॥

इसलिये उन धीरोदात्त प्राणप्यारी विदेह-कुमारी का ध्यान बहुत पड़ने के कारण से और उनके दुस्सह अपार वियोग-सन्ताप के कारण रामचन्द्र इस दिनों ऐसे दुर्बल हो गये हैं कि उनको देख कर मेरा हृदय काँपता है। और फिर अब लौटते समय यह पंचवटी में जाएँगे तो वे प्रदेश अवश्य उनके उद्दीपक होंगे जो चिरपरिचित होने के कारण प्रिय के साथी हैं। धीर-वीर गम्भीर रामचन्द्र के मूर्छित होने की पद पद पर सम्भावना

है इसलिए भगवती गोदावरी ! आपको उस समय अत्यन्त सावधान रहना होगा :—

जब राम स्वेद समेत हों,
पुनि पुनि विकल अचेत हों।
तब तब कमल परिमल भरी,
सरि-सीकरनु-सीतल करी।
मृदु मन्द पौन चलाइयो,
सुधि उनहिं फेर कराइयो ॥ १ ॥

त०—भगवती का विचार तो प्रेमानुरूप है किन्तु रामचन्द्र के सारे दुःख हरने का कारण तो पहले ही से विद्यमान है।

मु०—सो कैसा ?

त०—सुनिये जब लक्ष्मण वाल्मीकि के तपोवन के पास सीता को त्याग कर चले आये, तब वह प्रसव की पीड़ा से घबड़ा कर गंगा जी की धारा में कूद पड़ीं। वहीं उनके दो बालक हुए, जिन्हें अत्यन्त अनुग्रह रखने वाली पृथ्वी और भागीरथी रसातल को ले गयीं और माँ का दूध छूटते ही देवी जाह्नवी ने स्वयं उन बालकों को महर्षि वाल्मीकि के अर्पण कर दिये।

मु०—आश्चर्य है !

जिन सम जन की विपद्, [illegible] ।
[illegible] गुनि, धीर के, [illegible] ॥ २ ॥

—और अभी सरयू के मुख से शम्बूक-वध-वृत्तान्त सुनने के कारण रामचन्द्र के जनस्थान में आने की सम्भावना सुनकर, स्नेहमयी लोपामुद्रा के समान, ऐसे ही भय और शंका से प्रेरित होकर भगवती भागीरथी सीता समेत किसी गृह कार्य के बहाने गोदावरी से मिलने आई हैं।

—भगवती भागीरथी का विचार बहुत ठीक है, क्योंकि राजधानी में अनेक लोकोन्नति साधनों की सफलता के लिये राज-कार्य में मग्न रहने से रामचन्द्र का चित्त बहला रहता है। और अब बिना किसी काम-काज के उनका निरन्तर शोकावस्था में पञ्चवटी आना महा अनर्थकारी होगा, तो बतलाइये सीता देवी ऐसी दशा में उनका किस प्रकार आश्वासन करेंगी।

—इसीलिए तो भागरथी ने सीता से कहा है कि बेटी महाभागा वैदेही, आज चिरंजीवि कुश-लव की बारहवीं वर्षगांठ का दिन है, इस हेतु अपने पुरातन श्वशुर, राजर्षि, मनुवंश के प्रवर्तक, पापनाशक सूर्यदेव की पूजा निज हाथों के चुने हुए प्रफुल्लित पुष्पों से करो। इनके प्रभाव से पृथ्वी पर विचरते हुए तुमको वन की देवियाँ भी नहीं देख सकेंगी, मनुष्य की तो क्या सामर्थ्य है।— यों आवश्यकतानुसार सीता उनका आश्वासन कर सकेंगी और उन्होंने तुमसे भी कहा है कि "तमसा, तुमसे सीता का सम्बन्ध अनुराग है, इसलिये तुम उनकी

ीः—[सुनकर] सो उसका क्या हुआ ?

[फिर नेपथ्य में]

पोषित करिनि संग कुलहि प्रमुदित परम सो सर में रह्यो ।
तिहि मत्त इक मातंग बड़ मन स्फुरि लरि मारन चह्यो ॥६॥

ीः—[घबड़ाती हुई दो चार पद चल कर] बचाओ आर्यपुत्र ! मेरे इस बच्चे को बचाओ [सुधि करके घबराहट से] हाय ! हाय !! ये ही बातें जिनके कहने का स्वभाव-सा पड़ गया था अब फिर पञ्चवटी को देख कर सहसा मेरे मुख से निकलती हैं । हा आर्यपुत्र !

[मूर्च्छित होती है]

तः—धीरज धरो बेटी, धीरज धरो—

[नेपथ्य में]

[हे विमानराज ! यहीं पर ठहर जाओ]

ीः—[हृदय सँभाल कर भय और उन्माद से] जल भरे गरजते हुए धाराधर की मधुर गम्भीर ध्वनि के समान यह सरस वाणी कहाँ से आई जिसके कान में पड़ते ही तुरन्त मुझ अभागिनी में जान-सी पड़ गई है ।

तः—[स्नेह से आँसू भर कर]

किनहुँ सों लहि सरपुट नाद कों,
कवन हेत लिया मन तू नई ।
चकित चंचल और उत्कण्ठिता,
जिमि धनी धुन की सुनि मोरिनी ॥ ७ ॥

[हाथ फैलाती उठती]

तः—[भय है भय] इसकी तो भगवती को भी आशंका थी।

सीः—[नेपथ्य की बातें सुनकर] हाय यह क्या हो गया!

[फिर नेपथ्य में]

[हाय मेरी दंडक वन की संगिनी! हाय, प्यारी विदेहनन्दिनी!...]

[मूर्छित होकर गिरने का शब्द होता है]

सीः—हाय धिक्कार है! मुझ अभागिनी का नाम लेते लेते नील-नीरज-नयनों को बन्द कर आर्यपुत्र अचेत होगये हैं. हाय! पृथ्वी पर अधीर होके कैसी अशरणावस्था में पड़े हुए हैं. भगवती तमसा रक्षा करो, किसी तरह इन्हें आश्वासन दो।

(पाओं पर गिरती है)

तः—तुम ही कल्यानि इनहि, चाहिए चेत कराव।
इन हित सुरसरि कहहि ने, तिन तोकहि पठवाव ॥१०॥

सीः—चाहे जो कुछ करो, आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूँगी!

[शंकिता पूर्वक जाती है]

(स्थान—जनस्थान)

(रामचन्द्र सीता जैसे तथा नवल-नयन चीन मे धूप उठते हुए पत्थर-शिला पर पड़े दिखाई पड़ते हैं, तमसा खड़ी है)

सीः—[इस हर्ष मे भय ही भय] मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि त्रिलोकीनाथ को फिर चेत आया।

रा०—हाय प्यारी जानकी! प्राणवल्लभा जानकी!

सी०—(प्रणय-पूर्वक कोप करती हुई गद् गद् स्वर से आप ही आप) आर्यपुत्र! आपका यह सब कोरा दिखावा है, आप करते और हैं कहते और हैं। (आँसू भरकर) अथवा हाय! मुझ वज्रमयी अभागिनी का नाम ले-लेकर पुकारते हुए आर्यपुत्र के संग, जिनका शुभ-दर्शन जन्मान्तर में भी दुर्लभ था, ऐसी दशा में कब उचित है कि मैं निर्दयता का बर्ताव करूँ इनका और मेरा हृदय तो एक ही है।

रा०—(चारों ओर निराशा के साथ देखकर) हाय यहाँ तो कोई नहीं है।

सी०—भगवती तमसा, इन्होंने मुझे अकारण परित्याग भी कर दिया है, पर तो भी इन्हें इस प्रकार देख कर मेरी हृदयावस्था कुछ और ही हो रही है, जिसे मैं न जानती हूँ और न कह सकती हूँ।

त०—बेटी, मैं इसे जानती हूँ—

निज-पीतम-प्रेम-समागम की नहिं आस, उदास भरी दुचताई।
अपराध बिना निरवासित ह्वै, तन धुंज वियोग मलीन सदाई॥
बिरहागि बिथा सहि भारी अबै, तिहि देखन भेटन को अकुलाई।
सुनिकै दुख की बतियाँ पियकी, सरला जियकी सुतियाँ अरिलाई॥१३

रा०—देवी,

सरस सीतल तो कर-पल्लिवो,
अनु सदेह सनेह प्रसन्नता।
अजहुँ मो मन रंजन जो करै,
कित गई पुनि तू हिय-हारिणी॥१४॥

रा०—[पहचान कर] क्या प्रिया की सखी वासंती है।

वा०—महाराज, शीघ्र चलिये जटायुगिरि की शिखर से सीधे हाथ की ओर सीतातीर्थ के आगे गोदावरी में धँसकर देवी जानकी के पुत्र की रक्षा कीजिये।

सी०—[आप ही आप] हाय, तात जटायु, आज आपके बिना यह जनस्थान सूना-सा लगता है।

रा०—[आप ही आप] हाय, वासन्ती के वाक्य तो बड़े ही मर्म-भेदी हैं।

वा०—इधर आइये महाराज, इधर।

सी०—भगवती तमसा ! क्या सचमुच ही वनदेवियाँ भी मुझे नहीं देख सकतीं।

त०—अरी बेटी, मन्दाकिनी देवी का प्रताप सब देवताओं से बढ़ कर है, फिर तुम बार बार क्यों डरती हो !

सी०—तो चलो हम भी पीछे पीछे चलें।

[सब जाते हैं]

(स्थान-जनस्थान, गोदावरी तट)

[एक ओर से राम और वासन्ती का तथा दूसरी ओर से सीता और तमसा का प्रवेश]

राम—[आते हुए] भगवती गोदावरी ! आपको नमस्कार है।

सी०—भगवती तमसा, जब यह इतना बड़ा होगया है तो न जाने कुश-लव कितने बड़े हुए होंगे।

त०—जैसा यह है वैसे ही होंगे।

सी०—हाय, ऐसी अभागिनी हूँ कि मैं केवल आर्यपुत्र ही से नहीं किन्तु पुत्रों से भी अलग हूँ।

त०—भाग्य में ऐसा ही बदा था।

सी०—मैंने पुत्र उनके क्या किया जो छोटे छोटे विमल कोमल कान्तिमय, श्वेत दसनावली द्वारा दीन कपोल वाले निरंतर मधुर मनोहर मुसकराते हुए काकपक्ष [जुल्फें] रखाएँ मेरे पुत्रों के युगल मुख-कमल का आर्यपुत्र ने अच्छे चुम्बन न किया।

त०—भगवान सब भली करेंगे।

सी०—भगवती तमसा, प्यारे पुत्रों का स्मरण करने से मेरे स्तनों में दूध भर आया है और उनके पिता के निकट-वर्ती होने से मैं क्षणमात्र के लिए संसारिणी हो गई हूँ।

त०—इसमें क्या कहना है, सन्तान तो स्नेहातिशय की परा-काष्ठा तथा माता-पिता के परस्पर अन्तःकरण का बन्धन है—

सहि सनेह अनुरूप उभै दम्पति हिय पावन।
सुत एक युग आइ दुहुँ दिसि सों मन-भावन।
नित आनन्द नव ग्रन्थि अटल अनुराग की धारैं।
'नन्दन' कहियत सोइ सुभग सुन्दर सुखकारी ॥१०॥

सीः—[प्रेम के आँसू भर आप ही आप] इन्हें आर्यपुत्र ने खूब पहचाना—

रामः—जिन की सुधि आजहु आनि परै,
		हिय में यह मोद महारी सुहायी।
	जिन या संग काल अनेकौं बढ़े,
		जिहि पै करैं आनि प्रमोद सदायो ॥ २० ॥

वासः—महाराज यहाँ पर देखिये—
	मुरी दंपति चाँदनी दोनों मिला,
		कदली कुंजनि यहुँ कोरन छाई।
	जिहि संग जहाँ तुम सोवत हे,
		करतल विनोद भरे मुसकाई।
	सब देखि जिन्हें मृग कूजत हैं,
		मुख प्यारी सरावत बार कुमाई।
	कपोतों मृग के लघु घेरे रहे,
		कहुँ धन न देखिय नाहिं दिखाई ॥ २१ ॥

रामः—यह तो यह देखा नहीं जाता [रोते हुए दूसरी ओर देखते हैं।]

सीः—[आप ही आप] [illegible] इनके [illegible] मेरी और आर्यपुत्र की [illegible] [illegible] [illegible] आर्यपुत्र हैं, [illegible] हैं, [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] प्यारे पुत्र के [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible]

वा०—मधु बरसावत विपिन-द्रुम देहु सब,

फूल औ फलनि के अरघ मन भाये हैं।

संग में आमोद खिले-कंजनु को लैके मंजु,

मोद सों पवन करौ बीजना सुहाये हैं॥

चहकि चहूँधा पंछी गाओ कल-कंठिन सों,

बैतालिक जनु ताल के उमंग छाये हैं।

राजोचित सनमान साजो सबै क्यों न आज,

महाराज राम पुनि यहि बन आये हैं ॥२४॥

रा०—सखी वासन्ती, आओ यहाँ बैठें।

वा०—[बैठकर आँसू भरकर] महाराज, कुमार लक्ष्मण तो अच्छे हैं ?

रा०—[अनसुनी करके]

कर कमल सों दै नील, औ नीवार नव तृन विधि भली।

पादप विहँग कुरंग पोसे चाउ चित जे मैथिली॥

तिन देखिकैं जिय सोच व्यापत अकथ अति दुख की कथा।

करि वज्रहिय कोऊ विदारन, साल सालत सर्वथा ॥२५॥

वा०—महाराज ! मैं पूछती हूँ कुमार लक्ष्मण तो कुशल से हैं ?

रा०—(आप ही आप) अरे इस 'महाराज' के कहने में तो बड़ी व्याज-स्तुति भरी है, यह तो केवल स्नेह-शून्य सम्बोधन है। बस लक्ष्मण की ही कुशल पूछने में इसका कण्ठ भर आया है और नेत्रों से नीर बहने लगा, इससे हो न हो, यह सीता का भी सब वृत्तान्त जान गई है [प्रगट] हाँ कुमार अच्छी तरह हैं।

भला बैरी बैरे, कृतघ्नी है या निर्दिन मैं।
कहो भली धुंधै, [illegible] ॥ १३ ॥

सी:—(आप ही आप) नहीं वासन्ती, तुम बड़ी कठोर हो जो तुम्ही आर्यपुत्र को और भी दुख दे रही हो।

वा:—यह कुछ थोड़ा ही कह रही हूँ, मेरा और शोक उन से मन कहता रहा है।

रा:—सखी, इसके सिवाय और क्या कहें—

कुलवन्त के थे निठुर महा [illegible] ।
पर [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १४ ॥

सी:—(आप ही आप) आर्यपुत्र! मैं तो ऐसी जानती हूँ।

रा:—हाय! ऐसी जानकी तुम कहाँ हो?

सी:—हाय! हाय!! आर्यपुत्र तो बिलख बिलख कर रो रहे हैं!

वा:—देवि, दुनिया के सब अपना दुख दूर करने को रोना ही एकमात्र उपाय है क्योंकि—

उमड़े पूरे ताल कहँ जैसे।
जब निकसन मगु दीजिये।
तिमि सोक [illegible]
[illegible] ॥ १५ ॥

भला हंसी कैसे, मृगनयनि पै या विपिन में।
अहो स्वामी दीजै, उतर यहि को सोचि मन में॥ २७॥

सी०—(आप ही आप) सखी वासन्ती, तुम बड़ी कठोर हो जो दुखी आर्यपुत्र को और भी दुख दे रही हो।

त०—वह कुछ थोड़ा ही कह रही है, स्नेह और शोक उस से सब कहला रहा है।

रा०—सखी, इसके सिवाय और क्या कहूँ—

मृग-शावक के से विलोल महा भय-पूरित चकित लोचन वारी।
अरु कम्पित गर्भ के भार सों जो अलसाइ रही तनमें अति भारी॥
मृदुअंग मृनाल-सी कोमल जो निज चंदसों जावैं सुचंद उज्यारी।
वन बीच काउ रजनीचर नीच ने सुन्दरी मोरी विलासिनि कै हारी॥२८॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र! मैं तो जीती जागती हूँ।

रा०—हाय! प्यारी जानकी तुम कहाँ हो?

सी०—हाय! हाय!! आर्यपुत्र तो बिलख बिलख कर रो रहे हैं।

त०—बेटी, दुखिया के पास अपना दुख दूर करने को रोना ही एकमात्र उपाय है क्योंकि—

उमड़ि पूर जब ताल भरे।
जस निकसन तासु प्रतिक्रिया॥
विपुल शोक कस नहिं हू तथा
रुदन धीरज को अनुराग है॥ २९॥

वा०—महाराज, बीती को बिसार कर धीरज धरना चाहिए।

रा०—सखी क्या कहती हो—धीरज!

बीत गये बारह बरस, बिन सीया-सी बाम।
नासु नाम तक हू मिट्यौ, जियत तऊ यह राम ॥२३॥

सी०—आर्यपुत्र की इन बातों ने मुझे मोह लिया है।

त०—यथार्थ है बेटी—

प्रेम पगे आछे परम, जिय की रुचि सरसात।
दारुन सोक समूह सुनि, अति अमिय दरसात ॥
मेरे पिय के ये बचन, मृदु कटु जुगल अपार।
का नहिं ढारत मुच हिये, अमिय गरल की धार ॥२४॥

रा०—सखी वासन्ती,

आँखों मनु तिरछी बनी, बरछी की बिनलोन।
या हिय माहीं सोक की, कैसे दिया नहीं न ॥२५॥

सी०—(आप ही आप) मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि जिसके कारण बारम्बार आर्यपुत्र को दुःख होता है।

रा०—बड़ी धीरतापूर्वक अपने हृदय को थाम लेने पर भी पूर्व परिचित अनेक प्रिय पदार्थों के देखने से दुःख का आवेग आज फिर अनिवार्य होगया।

पुनि निरंतर सोक की, हिय में उठति हिलोर।
सकत न लिहि कैसेहु किये जो जो उमग कठोर ॥

रा०—हे कठोर हृदय जानकी, इन दृश्यों के देखने से यह लगता है कि तुम यहीं कहीं विचर रही हो, फिर मुझ अभागे पर दया न करने का क्या कारण है:—

हा हा ! प्यारी फटत हृदय यह जगत सून्य दरसावै ।
तन-बन्धन सब भये सिथिल से अन्तर-ज्वाल जरावै ॥
तो बिन जनु डूबत जिय तम में, छिन छिन धीरज छीजै ।
मोहावृत सब ओर राम यह, मन्द-भाग्य का कीजै ॥३८॥

(मूर्च्छित होते हैं)

सी०—हाय हाय आर्यपुत्र फिर बेसुध हो गये !

वा०—धीरज धरो महाराज, धीरज धरो ।

सी०—(आप ही आप) हा, आर्यपुत्र केवल मुझ अभागिनी के लिये समस्त संसार के मंगलाधार रूप आपका जीवन प्रतिक्षण दारुण संशयावस्था में पड़ रहा है, इससे बड़ी भारी विपत्ति की आशंका उपस्थित हुई है। हाय, अब मैं क्या करूँ ।

त०—बेटी, घबड़ाने का काम नहीं है रामचन्द्र का पुनर्जीवन तुम्हारे ही पाणि-पल्लव के स्पर्श से होगा ।

वा०—(आप ही आप) क्या अभीतक चेत नहीं हुआ ! हाय प्यारी सखी सीता तुम कहाँ हो ! अपने प्राणेश्वर की रक्षा करो ।

सी०—(शीघ्रता से पास जाकर राम का हृदय और ललाट छूती है)

सी:—(आप ही आप) आर्यपुत्र, अभीतक आप वहीं हैं।

रा:—हिम मम सीतल हीतल सुखप्रद मृदुल मंजु मन भायो।

लगन दुहाँ कर लह्यो ललित, जिन लवड़ी दहहिं सजायो ॥४०॥

(ऐसा कहकर पकड़ते हैं)

सी०—(आप ही आप) हाय हाय, प्राणपति के प्रियस्पर्श से मोहित होकर मुझ से चूक हो गई।

रा:—सखी वासन्ती, आनन्द के मारे मेरी इन्द्रियाँ अपने अपने कर्त्तव्य पालन में शिथिल-सी हो गई हैं, मेरे वस की बात नहीं रही है, इससे थोड़ी देर तक इनके हाथ को तुम्हीं थामे रहो।

वा:—(आप ही आप) हाय हाय, इन्हें तो उन्माद हो गया!

(सीता जल्दी से हाथ छुड़ाकर दूर हो जाती हैं)

रा:—हाय अनर्थ हो गया।

सो जड़ कम्पित स्वेदमय, कर सन मन मुद-दानि।

छिटकि परयो छिन जड़ कँपत, तासु पसीजत पानि ॥४१॥

सी०—[आप ही आप] हा, अभी इनकी निगाह ठीक नहीं हुई है, ठीक ठीक वस्तु पहचानने में असमर्थ तथा चकराते-सी मालूम होती है—इससे जाना जाता है कि आर्यपुत्र अभी अपने आपे में नहीं आये।

त:—[स्नेह से देख कर आप ही आप]

श्रम-सीकर-कन सों सुधी, कोरति सी पुलकाति।

प्रिय-तन-परस उमंग सों, बेटी मम दरसाति ॥

है उसी से पैदा हुआ निःसन्देह यह विकट उन्माद है जो मुझे अनेक कल्पनाओं में डाल कर बार बार सताता रहता है।

सी:—आर्यपुत्र की इस दशा का कारण मैं ही वज्र-हृदयवाली हूँ।

वा:—महाराज—

दसकंध को यह गृद्ध-नासित लौहमय रथ देखिये।
पुनि तासु खर-भीषन वदन कर अस्थि अब अवरेखिये॥
तिहि-पंख हनि, रिपु लैगयो नभ-पंथ सों तुव भामिनी।
अति बिलबिलाती बिबस पल पल दमकि, जनु घन-दामिनी† ॥४३॥

सी:—[भय से आप ही आप] आर्यपुत्र तात जटायु को यह दुष्ट मारे डालता है और मुझे भी हरे लिये जाता है, आइये आइये शीघ्र बचाइये !

रा:—[शीघ्र उठ कर आप ही आप] महात्मा जटायु के प्राण को और सीता को हरने वाले अरे पापी ! खड़ा तो रह कहाँ जाता है !

वा:—हे देव, राक्षसकुल-धूमकेतु, अभी तक आपका क्रोध ठंडा नहीं हुआ है।

सी:—(आप ही आप) हाय मैं भी पागल हो गई हूँ।

रा:—यथार्थ में अब के तो यह प्रलाप ही है :

अनुकूल-सुन्दर-जतन-मय, नित-बिरह-दुख अपनोद में।
बहु धीर-नासन-जनित अद्भुत बीर-भाव-विनोद में।

---

† पल पल बिकल दमकति बिपुल जनु नवल घन में दामिनी।

परिचित विपिन-बिहार, मित्र-चित्र सब सम्बन्ध-मय सों रह्यो ।
ताको वियोग अथाह निरवधि आइ कहु का विधि सह्यो ॥४४॥

सीता—(आप ही आप) यह निरवधि है तो हाय अब मेरे प्राण कैसे रहेंगे ?

राम—(आप ही आप) हाय क्या करूँ—

जहाँ कपिराज सुग्रीव मित्रता विचित्र,
[illegible] सुख-दुख बानर को भारी है।
कहुँ न प्रभंजन-कुमार को चलनि जहाँ,
आयसु हू की पूर्ति अधिक सिधारी है।
[illegible] न [illegible] जाके विभीषण को [illegible]—
अब जिह राम की [illegible] [illegible] है।
[illegible] न [illegible] [illegible] आनी नहीं,
कहाँ आय तू [illegible] [illegible] [illegible] है ॥४७॥

सीता—(आप ही आप) [illegible] [illegible] विचार [illegible] रहा।

राम—[illegible], अब जैसे जैसे चित्र पदार्थों का दर्शन होता है वैसे वैसे [illegible] [illegible] [illegible] ही जाता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। हाय, [illegible] ऐसा [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दुःख पहुँचाता है इससे मुझे [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] —[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

सीः—माता, कुछ तो दया करके ठहरिये और क्षण भर मुझे इनके दर्शन कर लेने दीजिये-हाय, फिर मिलना कहाँ !

राः—अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी भी एक सह-धर्म-चारिणी···

सीः—(घबरा के आप ही आप) वह कौन है आर्यपुत्र ?

राः—सीता की सुवर्णमयी मूर्त्ति है।

सीः—(आप ही आप) यथार्थ में आप स्वनाम-धन्य आर्यपुत्र ही हैं, इस परित्यागमयी लाज का काँटा अब मेरे हृदय से दूर हुआ।

राः—इसी के दर्शन से शोकाश्रु बहाते हुए इन नयनों को शीतल करूँगा।

सीः—(तमसा से) वह धन्य है जिसका आर्यपुत्र इतना आदर करते हैं और जो इनका मनोविनोद कर संसार की सब सुमंगल आशाओं की आश्रय बनी है।

तः—[मुसकराती हुई स्नेह से सीता को गले लगाकर] बेटी, इस में तो तुम अपनी ही बड़ाई करती हो।

सीः—[सलज्ज नीचा मुख करके आप ही आप] भगवती तमसा ने मेरी अपनी हँसी कराई।

वाः—इस समागम से आपको बड़ा कष्ट हुआ, मैं ही इस शोकोद्दीपन का कारण हुई—और आगे के लिये, जिससे आपके कार्य की हानि न हो वैसा ही कीजिये।

सीः—[आप ही आप] वासन्ती ही मेरी बैरिन होगई।

तः—आओ बेटी चलें।

अंक ४

अथ विष्कम्भक

[दो तपस्वियों का प्रवेश]

एक—सौधातकी, देखो आज अनेक अतिथियों के आने तथा उनके सत्कारार्थ यथोचित सामग्री उपस्थित होने से भगवान वाल्मीकि का आश्रम कैसा रमणीक लगता है, अहा!

चावर मला के लिए कुनकुने सींके माँड
मृग निज हालव्याली हिरनी को प्यावैं हैं।
ताके पीछे सों स्वाद हरिके रहयो जो नाहि,
स्वाद स्वाद पीवत सनाय हुलसावैं हैं।
धोंउ मिली मन रैयो सकी सुधि सौंधी सौंधी,
संयुत [illegible] सोंधन हित लावैं हैं।
बेर बेर देर फल मिले साग की सुगन्धि,
भरे भरे सामन सब [illegible] धावैं हैं ॥ १ ॥

सौ:—इन बुड्ढे दाढ़ियों के आने से आज का पढ़ना-लिखना तो हो चुका।

भा:—क्या कहता है मित्र, बुड्ढों के साथ गुरुजन का अपूर्व शिष्टाचार करता है।

सौ:—अरे भाण्डायन, इस अतिथि का क्या नाम है जो सब बूढ़े और बुढ़ियाओं का मुखिया मालूम होता है।

भा:—धिक् मूर्ख, क्या व्यर्थ हँसी करता है, जानता नहीं कि ऋष्यशृंग के आश्रम से अरुन्धती के साथ, महाराज

सौ०—समधिन से उनकी भेट यहाँ हुई या नहीं ?

भा०—अभी हाल ही वशिष्ट जी की आज्ञा से श्रीअरुन्धती कौशिल्या रानी के पास यह कहने गयी हैं, कि उन्हें अपनेआप जाकर विदेहराज से भेट करनी चाहिए।

सौ०—जब तक ये बड़े-बूढ़े आपस में मिलें, तब तक हम भी क्यों न विद्यार्थियों के साथ खेलकूद कर आज की छुट्टी मनायें।

[दोनों निकलते हुए]

भा०—देख, यह पुराने वेद पारंगत राजर्षि जनक यहाँ हैं जो भगवान वाल्मीकि और वशिष्ठजी से मिलकर यहाँ आश्रम के बाहर वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए हैं।

डाँकर की सी तन बदन, आके दिन अरु रैन।
साँप सोच की दौं लगी, सुलगत चैन परै न ॥ २ ॥

[जाते हैं]

॥ इति विष्कम्भक ॥

[जनक आते हैं]

ज०—सोचनु सुता की विषम विपदा ह्रदय में जिह काल।
हिय होत हा ! घायल बड़ो, बाढ़े बिथा बिकराल।
बीते दिना बहु तउ उलहि मम सोक क्रोध बिसाल।
चलि जाय पैं जनु साँम कारो निरत सालत साल ॥ ३ ॥

हाय, यह दारुण दुःख मुझ से सहा नहीं जाता इधर वृद्ध तो अवस्था और असह्य विपदा की विथा घेरे हुए, उधर पराक सान्तपन आदि निरन्न निर्जल व्रत करने से गाँठ का रक्त-माँस भी सूख गया, किसी काम का रहा नहीं,

इस पर भी यह शरीर नहीं छूटता। आत्मघात करके [illegible]
छुटकारा कहाँ? क्योंकि ऋषियों के कथनानुसार [illegible]
पापी को अन्धतामिस्रादि घोर नरक भोगने पड़ते हैं
परसों हो गये फिर भी जैसे जैसे सोचता हूँ, मेरा दु[illegible]
पहले के बदले प्रतिक्षण और भी इस रूप धारण [illegible]
ही जाता है, इसके शान्त होने का लक्षण कोई भी तो न
दिखाई देता। हाय क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, हाय वै[illegible]
सीता जगन्माता वसुन्धरा के पवित्र गर्भ से तो [illegible]
किन्तु न जाने क्या ऐसा भाग्य में लिखा था जिसका [illegible]
परिणाम हुआ। हा इसी लाज के मारे मैं जी खोल [illegible]
रो भी नहीं सकता, हाय बेटी, हाय!!

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥१॥

[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ॥४॥

[[illegible]]

[[illegible]]

३०—[[illegible]] [illegible]
[illegible] हैं।

[डरकर] फिर महारानी किसे कहा [अच्छी तरह देखकर] हा, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी प्यारी सती कौशिल्या हैं ? अब इन्हें देख कर कौन विश्वास करेगा कि यह वही हैं।

कमला-सरिस कमनीय अति, दशरथ भवन में जो लसी।
यह 'मलिन' बोलन नहिं उचित, साम्राज्य श्री कमला बसी।
विधि वाम बस अति विपति लहि, यह रूप कौशिल्या हुई।
प्रिय-सोच की मारी लगे जब, और की कछु और ही ॥६॥

यह और एक दूसरा दुर्दशा का फल है।

मोहित प्रिय दम्पत रहो, जिन उत्पुर को भौन।
अति असहन मोहिं लगे, मनहु जरे पै लोन ॥७॥

[अरुन्धती कौशिल्या तथा कंचुकी का प्रवेश]

अ०—मेरा तो यही कहना है कि आप स्वयं चलकर विदेह राज से मिलें और यही तुम्हारे कुलगुरु की आज्ञा है, इसीलिए मुझे आपके पास भेजा है, फिर पद पद पर आपके आशंकित होने का क्या कारण है ?

कं०—देवी मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने को सँभाल कर भगवान वशिष्ठजी की आज्ञा का पालन करें।

कौ०—यह सोच कर कि मुझे अभी मिथिलाधिपति से भेंट करना है मेरे सब दुःख एक साथ उमड़ आते हैं, और शोकाकुल हृदय को सँभालना कठिन होगया है।

अ०—इसमें क्या सन्देह है।

कौ०—हाय मेरा दुःख बढ़ता ही जाता है।

[बेसुध होकर गिर पड़ती है]

ज०—हाय हाय यह क्या हुआ ?

अ०—राजर्षि, हैं क्या !

नृप-भवन मिसुजन संग सुखमय उन दिनन की सुधि धरी।
निरखत सनेही तुमहिं, अब सो आइ इनकी बढ़ि परी।
ऐसी दसा लहि नृप मनी यह अति बिमूढ़ लखात है।
जिय कमल-कोमल कुस-नियन को अंक में कुम्हिलात है ॥१४॥

ज०—अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जन्मा हूँ, कि इतने दिन पीछे मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेम-पूर्वक नहीं देख सकता।

प्रिय, अभिन्न-उर पूज्य, सुहृद, समधी, हितकारी।
समधारी-आनन्द अखिल-जीवन-फल-भारी।
यह तन अथवा जीव अधिक इनमों वा प्रियतम।
रहे न का महाराज यदप्र प्रन श्रीदसरथ मम ॥१६॥

हाय हाय ! यही वह कौशिल्या है—

यदि भई अनबन कबहुँ इनकी कान्त सों एकान्त में।
निज निज अपार उराहनो दम्पति दियो मोहि निह मर्म।
नित प्यार में या कोप में मध्यस्थ दोउन को रह्यो।
अब तासु सुधि दाहनि हृदय अब जात नहिं यह दुख सह्यो ॥१४॥

अ०—हाय, बहुत देर से इनकी साँस नहीं चलती और हृदय धड़कना भी बन्द होगया है।

ज:—हाय प्यारी सखी।

[कमण्डल से हाथ में जल लेकर छिड़कते हैं]

सुहृद तुल्य द्विजाप दयामयी,
प्रथम पूर्ण भद्रा अनुकूलता।
यनि महा पुनि शासन क्यों विधे,
सब करें मन में ध्वनि वेदना॥१५॥

कौ:—[चेत में आकर] हाय बेटी जानकी तू कहाँ है। विवाह-संस्कार की उमंग से रमणीय निर्मल-मधुर मुसक्यान भरे, तेरे मनोहर भोले-भाले प्रफुल्लित मुख-कमल का अभी तक मुझे स्मरण बना हुआ है; आ बेटी, विलसितचन्द्र-चन्द्रिका के समान, अपने कोमल-कमनीय शीतल-शरीर से छटा-छिटकती हुई मेरी गोदी की शोभा बढ़ा। महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह जानकी परम-पूज्य रघुवंशियों की वधू है किन्तु हमारी तो फिर भी जनक के सम्बन्ध से बेटी ही लगती है।

कं:—ऐसा ही था महारानी, ठीक है।

सोहे महीप सुत चार सुरूप वारे।
श्री राम किन्तु सब सोंहि विशेष प्यारे॥
त्योंही वधूनि मधि श्री मिथलाकुमारी।
शान्ता सुता सम रही नृप की दुलारी॥१६॥

ज:—हाय प्यारे सुहृद दशरथ महाराज, तुम ऐसे ही थे तुम को कोई कैसे भूल सकता है!

पूजत कन्या पच्छ के, वर पच्छहिं यह रीति।
किन्तु रह्यो मैं पूज्य सुव, नाते सों विपरीति॥

और जिसका बालक है जो अपने मृदुल सुघर अंगों से हमारी आँखें शीतल कर रहा है।

अ:—[आनन्दाश्रु भरकर अकस्मात् ही आप] यही भगवती भागीरथी द्वारा कथित कर्णान्तिक गुप्त रहस्य है किन्तु यह नहीं जानती कि इन दोनों चिरंजीवों में से कुश है या लव।

नव नील सरोरुह सों तन स्यामल चारु मनोहर की छवि भावै।
मृदु कुन्द कली सो दसनी छिब सों निज सुन्दर सिरी छिपाय बनावै॥
निठुरता सों सो दुति रम्य अनूप लसे रघुनन्दन ही अनु भावै।
जिहि घरे है जो केवल देखन सों मन अनूप-अनूप सुख लावै॥११॥

कं:—मुझे तो यह लगता कि यह बालक क्षत्रिय ब्रह्मचारी है।

उ:—ठीक, क्योंकि—

दोऊ कालजीन और सोह ई निज सदै,
जिनके हिय में जिन सुबरे सुहावै है।
अतर विभूति उर चढ़त सबवें अंद,
करे ए सुमहान सुर रिपि हरे है।
मौसी धरा को मेरे कोमली ललित वही,
कोमल कपोल जग लीनी सरस है।
हम ऐ मधुर, मधा लीला के रस रस,
मदे सुराई अगम और उतरे है॥१२॥

भगवती अरुन्धती आप जानती हैं यह किसका बालक है?

अ०—आज ही हम लोग भी आये हैं।

कौ:—बेटा चिरंजीव रहो।

ज:—आ बेटा, [लव को गोद में लेकर मन ही मन] बड़े भाग से न केवल गोद ही भरी, किन्तु बहुत दिनों का मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

कौ:—बेटा इधर भी आ [गोद में लेकर] अहा, यह बालक न केवल खिलते हुए नीलोत्पल के समान श्याम वरन् मांसल सुन्दर शरीर से, तथा हर्षों से गद्गद हुए नन्दित-कण्ठ वाले कलहंस हंसों के से गम्भीर मृदु-गम्भीर ध्वनिस्वर से अपने रामचन्द्र की अनुहार करता है; किन्तु पूर्ण प्रफुल्लित पद्म-गर्भ के पत्तों के तुल्य, इसका शरीर-स्पर्श भी वैसा ही मृदुल है। चिरंजियो बेटा, अपना मुख-चन्द्र तो दिखला, कैसा है! [ठोड़ी ऊपर को उठाकर भली भाँति निहार कर हर्षाश्रु भरकर] राजर्षि, क्या आप नहीं देखते कि अच्छी तरह निहारने से इसका मुख बेटी वधू जानकी के चन्द्रानन से मिलता है।

ज:—देखता हूँ सखी, मुझे भी वैसा ही लगता है।

कौ:—आश्चर्य है न जाने क्यों मेरा हृदय उन्मत्त-सा हो गया है और भोला-भोले इस अनिर्वचनीय मनोहर मुख ने मुझ पर कुछ मोहनी-सी डाल दी है।

ज:—सिय रघुनन्दन की झलकि, यही यह बाल महानुभाव।
मनो प्रतिबिम्बित है दोउ माहिं, नहिं उनकी दुति आकृति हाव।
निरखि उन मों यहि को मद भाँति, फिरि नव बाल सुशील सुभाव।
हुआ चित चंचल क्यों मन दैव, भुलानो मैं अटक्यो इन भाव [illegible]॥

ज:—(हँसकर) इतने पर प्रगट हुआ कि कुमार रामायण जानने में बड़ा प्रवीण है।

ज:—(विस्मय कर) जो तुम कथा जानने में बड़े प्रवीण हो तो बतलाओ कि दशरथनन्दनों के पुत्रों का क्या नाम है। और कौन कौन किस मा से उत्पन्न हुआ है।

ल:—कथा का यह भाग हमने क्या, किसी ने भी अब तक नहीं सुना।

ज:—क्या कवि ने इसकी रचना नहीं की?

ल:—रचा तो किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ। उसी का एक भाग, दशरथवंश के रूप में खेलने के लिये तैयार हो गया है। अब उसे अपने हाथ से लिखकर वाल्मीकि जी ने नाटकचार्य भगवान भरतमुनि के पास भेजा है।

ज:—सो किस प्रयोजन से।

ल:—जिससे भगवान भरतमुनि अप्सराओं द्वारा उसका अभिनय करावें।

ज:—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है?

ल:—भगवान वाल्मीकि जी की उसमें इतनी अधिक प्रीति है कि उसे कितने ही शिष्यों द्वारा भरताश्रम पर भेजा है। और फिर भी कहीं रास्ते में गड़बड़ी न हो जाय इस भय से, धनुषबाण बँधाकर हमारे भाई को साथ कर दिया है।

कौ:—तुम्हारे भाई भी हैं?

ल:—हाँ, उनका नाम "आर्य कुश" है।

और राम ने भी कुछ विचार न करके शीघ्रता कर डाली.. यह आश्चर्य है।

निरत यज्ञ सम घोर यह, लिप-मग अनरथ-पात ।
आलोचत, मम अति प्रबल क्रोधानल बढ़ि जात ॥
समर माँहि कर चाप गहि, अथवा दै निज स्राप ।
अन्याई कौं हनि अबहिं, उचित हरन सन्ताप ॥२४॥

कौ०—हाय भगवती अरुधन्ती, राजर्षि के कोप को शान्त कर के राम की किसी प्रकार रक्षा कीजिये।

अ०—यहि भाँति निकारन कोप महा ।
अपमानित मानधनी सबहीं ॥
सुन राम तिहारी छिमा करिये ।
नृप क्षोभ सबै जिय से हरिये ॥
यह दीन अधीन प्रजा सबरी ।
प्रतिपालन जोग अबोध भरी ॥२५॥

ज०—प्रजा माँहि लखियत दुखे, निरपराध द्विजपाल ।
अबला-गन जन-जरठ अरु, अंग-भंग बेहाल ॥
जो जीवन-धन प्रिय-सुअन, रघुनन्दन का और ।
चाप स्राप को काम कछु, अब नहि काहू ठौर ॥२६॥

(कौतुक भरे ढूंडते हुए बालकों का प्रवेश)

लड़०—अजी "अश्व अश्व" कर के जिस पशु को नगरों ने पुकारते हैं सो हमने आज अपनी आँखों से देखा।

ल०—अश्व का वर्णन तो पशु-शास्त्र तथा युद्ध-शास्त्र दोनों ही में किया है, कहो तो कैसा है?

ल०—तुम भी बड़े मूर्ख हो, तुमने इस पत्र में पढ़ा तो है, देखते नहीं सैकड़ों रथ सिपाही हथियार बांधे कवच पहने धनुष लिये इसके साथ हैं—यह तो अधिकतर सेना ही दिखाई पड़ती है, इस पर भी तुम्हें विश्वास न हो तो जाकर पूछ लो।

बटु०—तो क्यों भाई, ये सब के सब किस प्रयोजन से घोड़े को घेरे फिरते हैं!

ल०—[घृणा के साथ आप ही आप] जान लिया, ठीक, अश्वमेध तो विश्वविजयी नृपवर के अतुलित महत्व तथा जगत् के अन्य क्षत्रियों के पराभव की कसौटी है!

[नेपथ्य में]

दशकन्धर-कुल घातक रिपु, धर्म धुरन्धर धीर।
सात द्वीप नव खंड में, एक वीर रघुवीर॥
ताही को यह अश्व-तुरंग, फेरत सुभट अपार।
अथवा इनके रूप में, क्षत्रिन को ललकार॥१८॥

ल०—[क्रोध प्रगट करके] अरे इन लोगों के वाक्य कैसे क्रोधानल भड़काने वाले हैं।

बटु०—क्या कहा गया, कुमार तुम तो चतुर हो सब समझ गये होगे?

ल०—अरे क्या सारा संसार क्षत्रिय शून्य हो गया जो तुम इस प्रकार दून की हाँक रहे हो।

रा०—[हँसकर] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे हैं [[illegible] [illegible]]
[illegible] तो फिर—

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
    [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जो [illegible] की,
    [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible],
    [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible],
    [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] है ॥१०॥
    [[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है]

सु०—चातुर्मास—

विलस हरित युत सुर समुद मन हिलुत धीर समान।
निर्जन वह सिसु मलय विपिनों डोल मोहि समान ॥
मोहि सुधि आवत राम धनु-धनु सघन घनश्याम।
सुनि बसुन-नाद-विपुल झूमत सुखमानु घनश्याम ॥४॥

व०—सरस मन हरि अंचलित जिन रघुनी उतान।
ममर मधु बगाउ गहि मम पुलित मंत्र विसाल ॥
वनदेवि बिल मनमन्नाथ दिनिन जिन रघजाल।
निरत सदजस सुमन रसाल हिरद बहिर मान ॥
जे धरा मन सहज छेन पर बालहि मात।
होत मोहे मन मन लगि हाल को यह बात ॥५॥

सु०—धन्य, अब मद लित पर इनका चाल चौका नहीं कर सकते तो फिर तर पर से क्या होता है?

व०—आर्य, क्षमा करो! इतने चार और हमारे आश्रित-जनों का मार्ग चलना प्रारम्भ कर दिया।

हरनी की कोमल गोद सकल सखी,
घहि घहि सब सघ दिखिन केलाये देत।
शंकरि-शुभ जो कलित किरिनु जनि को:—
सुंदर, नितहुँ काल सुख उपजावे देत ॥
भावत मकरन्द विपुल सुख गुदनिको,
कारि यह धीर अहनिश दें बिहाँवे देत।

(नेपथ्य में महा कोलाहल)

(रंगभूमि बहुत काल से तब का प्रवेश)

र:—हे रघुकुल नाह, क्यों न हो, आखिर वो सब इक्ष्वाकुवंशी राजपूत हो न! लो आओ मैं तुम्हारे सामने आया।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

र:—(रंगभूमि देख कर) अरे क्या फिर भी ये हारे हुए योद्धा साहस करके युद्ध के लिए लौट आते हैं और तुम पर प्रहार करना चाहते हैं धिक निर्लज्जो!

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(इधर-उधर घूमता है)

र:—हे कुमार,

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

र:—(अपने रंगभूमि देख कर) अहा! इन सूर्यवंशी राजा ... वीर की बातें मधुर और कटु दोनों ही प्रकार की हैं, इस कारण इन्हें छोड़ कर इसे ही देखना चाहिए।

एक दूसरे के सम्बन्धी होने से मिलती है, इसी को लोग [illegible] का [illegible] कहते हैं और इसे ही [illegible] विलासों के नाम से पुकारते हैं।

[illegible] के [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] की [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१७॥

दूसरे पु:—[एक दूसरे से प्यार ही प्यार]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] कोमल [illegible] [illegible] शरीर है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नीर है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] हेतु [illegible] है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] है ॥१८॥

[illegible]—

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] है ॥१९॥

[illegible]:—[[illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] ही [illegible]]

[illegible] [illegible] की [illegible] जो,
　　[illegible] [illegible] [illegible] ने [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] कोमल [illegible],
　　[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥२०॥

बिसरि जानि सकैं बस काहूही,
सुमरजन्द सबै रघुबंस कै ॥२३॥

सुः—(आँखों में आँसू भर और गले लगा कर)

तुव तात लछिमन ने कियो जो इन्द्रजीत निपात ।
सो सब लगै मोहि आ परौ जनु काल्हि-ही-की बात ॥
अब तिनहुँ के सुत तुव, धारत वीरता-व्रत-साज ।
धनिधन्य दसरथ-कुल-प्रतेहा बिमल छाई जात ॥२४॥

चं:—(कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, सो कुल की मतिवान ।
पुत्र जेठे ही के नहीं, जब कोऊ सन्तान ॥
याही दुःखसों अति भरे, चिन्तातुर दुख-दीन ।
सो पितु गुरु बन्धुनि सहित, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सुः—हाय, चन्द्रकेतु की ये बातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

लः—(आप ही आप) अहा, चन्द्रकेतु ने निखिल रघु का सत्कार सो रहा है:—

जिमि करत प्रफुल्लित कुमुदिनी कौं उदित पूरन चंद ।
तिमि करत, हिय मैं हरष उपजौ अति अमल आनंद ॥

किन्तुः—

ल:—जो वस्तु अपनी ही है भला उसके स्वीकार करने में संकोच कैसा? किन्तु बात यह है कि वनवासी होने के कारण हमें रथ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं।

सु:—वत्स, तुम दर्प और सौजन्य का यथोचित बर्ताव करना जानते हो, जो कहीं तुम ऐसे को इक्ष्वाकु-कुल-कमल-दिवाकर राजा रामचन्द्र देखते तो उनका हृदय प्रेम से गद्गद् होजाता।

ल:—सुना गया है कि वे राजर्षि बड़े सज्जन पुरुष हैं:—

सोचहि हमहुँ न मन्द-विचारि।
जो कहे मातु निज हिय विचारि॥
गुनवन्त राम को अगम नाहिं।
कछु मानस को जस पूज्य नाहिं॥
दें सब रघुबिनु कों तुरत मानि।
तुव हृदयस्थ जो कही बानि॥
सुनि ताहि हमहुँ जिय कढ़्यो नेम।
बस, और कछु नहिं किये प्रेम॥११॥

च:—(मुस्कराता हुआ) क्या आप को हमारे पूज्य-चरण तात के प्रताप की बड़ाई बुरी लगती है।

ल:—अजी बुरी लगे या न लगे, पर इतना मैं पूछता हूँ कि राजा रामचन्द्र तो बड़े धीर स्वभाव के सुने जाते हैं। वे न तो स्वयं अभिमानी हैं न उनकी प्रजा को अभिमान होता है, फिर बतलाइये ये लोग उन्हीं के आदर्श होकर ऐसी राक्षसी भाषा क्यों प्रयोग करते हैं? देखिये—

समर सैनिक वीरनि मारिकैं,
प्रगट मन्द करी गुन वीरता।
परशुराम मुके जिहि सामने,
जनि कर्यो उनकी कहि बात सो ॥२२॥

ल०—(हँस कर) आर्य मानलो कि उन्होंने परशुराम जी को भी हरा दिया, पर इसमें भी क्या बड़ी प्रशंसा की बात हुई।

जीभ को बल द्विजन में यह स्वयं-सिद्ध प्रमान।
बाहु को बल क्षत्रियनु में जग प्रसिद्ध महान॥
मन्त्र-धारी द्विज रहेउ भृगुवंशनन्दन महाराज।
कहु तिनहिं जय करि राम ने कियो कौन दुर्जय काज॥२३॥

सु०—अब इन दोनों की क्रोधानल भड़क गई—

च०—(बिगड़कर)

कौनसों यह पुरुष उपज्यो नयो जग के माँहिं।
जासु लेखे परशुरामहु वीर-पुंगव नाहिं॥
सत भुवनहिं कश्यप को जिन विपुल दीनो दान।
तिन मात पावन चरित को नहिं जाय रंचक-ज्ञान॥२४॥

ल०—अजी रघुपति का चरित और उनकी महिमा कौन नहीं जानता. यदि कुछ कहने की बात हो तो कहा भी जाय, किन्तु हम अपने मुख से क्या कहें—

जे बड़े जगत निज बड़े काम।
सब भाँति उचित उत्सव ललाम॥
निज चरित अलौकिक अति उदार।
कालोदय विषय हैं नहिं हमार॥

अंक ६

अथ विष्कम्भक

(उज्ज्वल विमानों पर चढ़े विद्याधर और विद्याधरी का प्रवेश)

वि०—अहो, अविनय कलह के कारण परम प्रचण्ड अखण्ड साकेत में दोनों इन सूर्यवंशी कुमारों के विक्रम-युक्त विचित्र-चरित्रों ने सब सुरासुरों को कैसा विमोहित कर लिया है क्योंकि हे प्रिया, देखो—

झन झनन कंकन मन क्वनित कल किंकनीक विसाल।
झुन घोर मन लगि, जानु गुन, धनि धनि मन्द कराल ॥
धनु तानि श्रम, सर तजन, छिन भिन्न निरत चंचल-चार।
अन-भपट अद्भुत तिन दोउन कधि यधन युद्ध अपार ॥ १ ॥

दोउ कुँवरनु के कल्यान काज।
ढम ढम दुन्दुभि नभ बजनि आज ॥
गम्भीर जासु सुर-दल रोर।
जनु सरस सघन घन घन कठोर ॥ २ ॥

इससे चलो हम भी, इन दोनों वीरों पर सुन्दर प्रफुल्लित स्वर्णमय सरोजों से मिश्रित, मधुर-मकरन्द-सुरभित, कल्पतरु, मन्दार आदि दिव्य-द्रुमों के नवीन मनोहर सुगंध स्वच्छ कमनीय-कलित-पुष्पों की निरन्तर सानन्द सघन वर्षा करें।

मानो साक्षात् भगवान अनिरुद्ध चले आ रहे हैं। चारों ओर यह उन्हीं का प्रचण्ड प्रताप फैल रहा है। अब तो ज्वाला सही नहीं जाती, इसलिए प्यारी को अपने पार्श्व में छिपाकर यहाँ से कहीं दूर भागना चाहिए।

(वैसा ही करता है)

विद्याधरी—आहा प्राणनाथ ! मंजु-मुक्तमाल सम शीतल मृदुल तुम्हारे पुष्पवत् शरीर के स्पर्श से आनन्दोल्लासित मुझ अधरुँदे तरल नयनों वाली का सन्ताप अब दूर हो गया है।

वि०—प्यारी, भला मैंने इस में क्या किया, अथवा—

घर बड़ न करै तऊ मयंक,
बसि सर्वारि सर्व विपद हरै।
सुहद जो कहुँ जासु अहान में,
चयसि सो निहि उंचननूरि है ॥ २ ॥

विद्याधरी०—चमचमाती चपला की चपल चमकयुक्त मतवाले मयूरों के कंठ सरीखे सघन-श्यामल धराधरों से यह आकाश-मण्डल क्यों व्याप्त हो रहा है?

वि०—अहा ! अवश्य ये कुमार लव द्वारा चलाये हुए वरुणास्त्र का प्रभाव है, देखो ! इस प्रकार सहस्रों निरन्तर मूसलधाराओं के पड़ने से यह ब्रह्माण्ड ठण्डा हो गया।

वि०धरी०—यह बड़े आनन्द की बात हुई

वि०—हाय हाय ! अति भय की घड़ी है क्योंकि प्रबल आँधी के जोर से चारों ओर उमड़ते-घुमड़ते घूमघूम कर घनघोर मचाते काले मतवाले मेघों के सघन गाढ़ान्धकार में देखा

चं:—प्रिय, ये मेरे आराध्य-चरण पूज्य तात हैं।

ल:—जैसे तुम्हारे लगते हैं वैसे ही हमारे भी लगे, क्योंकि अब तो हमें मित्र मान चुके हो न? किन्तु रामायण के परिचायक तो चार पुरुष हैं जिनमें से प्रत्येक को तुम इसी पद (तात) से सम्बोधन कर सकते हो इसलिए बतलाइये वह उनमें से कौनसे हैं?

चं:—ये हमारे सबसे बड़े तात हैं।

ल:—(उल्लास से) अहा क्या ये रघुनाथजी हैं, आज का दिन धन्य है जो इनका दर्शन हुआ (विनय और कौतुक से देख कर) हे तात, यह वाल्मीकि जी का शिष्य आपको प्रणाम करता है।

रा:—आओ प्यारे आओ, बस करो बेटा बहुत विनय हो चुकी, आओ बारबार मेरे हृदय से लगकर आनन्द दो—

नव ललित मुकुलित कमल कोमल गर्भ-दल अनुहार।
नव परम सुन्दर श्याम सुखमय सुभग सुचि सुकुमार॥
घनसार चंदन लेप सम सीतल सुखद अमन्द।
मम अंग सों लगि देत नित अनुपम परम आनन्द ॥१२॥

ल:—(आप ही आप) इनका स्नेह तो देखो अकारण ही मेरे ऊपर कितना अधिक है। और फिर भी मैंने बे समझे-बूझे इनसे इतना बैर बढ़ा लिया कि शस्त्रग्रहण करने तक की नौबत पहुँच गई (प्रकट) तात, आशा है कि आप मेरी इस चपलता को अब क्षमा करेंगे।

तदनन्तर इस समस्त गूढ़ विद्या को भगवान् कृशाश्व ने मनुष्य वर्ग से भी ऊपर सेवा करने वाले शिष्य विश्वामित्र के हेतु प्रदान किया और उनके प्रसाद से हमने सीखा, यह तो पहला प्रश्न है। फिर तुमको किसने बतलाया यह हम जानना चाहते हैं।

ल:—आप के पास हम दोनों को यह अस्त्र सिद्ध हो गये।

रा:—(विचार कर) असम्भव कुछ नहीं, परम-पुण्य-फल की यह कोई महिमा है परन्तु द्विवचन का प्रयोग तुमने क्यों किया?

ल:—हम दो भाई हैं जो एक ही साथ जन्मे थे।

रा:—तो वह दूसरा कहाँ है?

(नेपथ्य में)

(नारायण, नारायण!)

हा चिरंजीव सब भाँति, कुमार।

सुर-सेन करत सम्मान धीर।

निज सखा, बनायहु सकल भेव।

का कहत! 'कवी यह सत्यमेव'॥

सो सब त्रिभुवन महिं मान्यमान।

'कविराज' शब्द हो भासमान॥

रविवंश अम्बुज मनहु कान्ति।

जाही छिन सों मन होइ शान्ति॥११॥

रा:—इन्द्रमणी-सी-सी श्याम-प्रभा, यह को है मनोहर धारन हारी।

अरु कलकंठ की मंजुली धुनि, कान सबै पुलकात हमारी॥

[illegible]—([illegible]) [illegible]

[illegible]—[illegible] है ?

[illegible]—[illegible] है, [illegible] है ?

[illegible]—[illegible] !

[illegible]—[illegible] है [illegible] है ।

[illegible]—([illegible]) [illegible] है

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible] है [illegible]

[illegible]—[illegible] है [illegible]

[illegible]—[illegible] है

[illegible]—[illegible] है, [illegible] है ।

(लेकर) तो इनसे किसी उपाय से पूछूँ कि ये दोनों किस के बालक हैं।

ल०—तात यह क्या बात है जो:—

जग मंगलप्रद बदन सुख, नयन नीरज-मान धारि।
सोमबिन्दु-युत मंजरी, करत मंजु उनहारि ॥२१॥

कु०—मैया,

सियदेवी बिना रघुनन्दन कों बहुधा सब सोकहिलोक लगाई।
निज प्यारी वियोग वियासों तिन्हें, वनतुल्य सबै जग देत दिखाई।
दुइ शीतल प्रेम-प्रमोद कहाँ, विरहागिसों हीतल तप्त सदाई।
सुख सानों पढ़ी कबहूँ न रमायन पूछत ऐसे अजान की नाई ॥३०॥

रा०—(आप ही आप) हा, यह तो ऐसी बेलाग बात हुई जिस में कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता, अब बस जरा पूछने से क्या होगा? अरे दग्ध हृदय, ऐसा तू अकस्मात स्नेह से उबल पड़ा और एक साथ खुल गया कि लड़के भी तुझ पर तरस खाने लगे! अच्छा तो कुछ और छेड़ूँ (प्रगट) वत्स, तुम दोनों ने जो भगवान वाल्मीकि की पद्यमयी मनोहारिणी रविकुलकीर्ति-प्रभा-विस्तारिणी रामायण पढ़ी है उसका कुछ अंश कौतूहल-वश मुझे भी सुनने की इच्छा है।

कु०—वह सम्पूर्ण ग्रन्थ ही हमने पढ़ा है। लीजिए, बालकाण्ड के अन्तिम अध्याय में निम्नलिखित भाव के ये दो श्लोक स्मरण आते हैं!

रा०—अच्छा बोलो बेटा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] — [illegible]
[illegible] —

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] — [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

जाकी करी सराहना, गुरुजन प्रमुदित होय।
जिहि स्वच्छाह में तात की, धन्य मिलनी रमनीय॥
सो पितुसुत अरु विपति मह, धँसे [illegible] नैन।
किहि अभाग बस राम को, [illegible] आजु पर्दै न॥४८॥

(नेपथ्य में)

[हाय हाय]

चंचल नेत्र विशेष सों, होत जासु अनुमान।
छवि मलीन अब रघुपतिहिं, [illegible] दीपदपान॥
परत के मूर्छित परे, जनक नृपहिं [illegible]॥
शोक विकल [illegible], मातहु हा [illegible]॥४९॥

रा:—हा तात, हा माता, हा जनक!

निमिवंश औ रघुवंश की जो मगन-मंगल कारिनी।
निहुँ भुवन मधि कमनीय कीरति-कौमुदी विस्तारिनी॥
सा [illegible] जिन पर निठुर पापी राम है।
सो पुण्य [illegible] पे मुख [illegible] को [illegible] काम है॥

([illegible]) [illegible]
[illegible]

([illegible])

[illegible]

([illegible])

अंक ७

[स्थान-रंगभूमि]

[लक्ष्मण का प्रवेश]

लक्ष्मण—आज भगवान वाल्मीकि जी ने हमें, तथा ब्राह्मण, क्षत्री आदि सम्पूर्ण पुरवासियों और सुरासुर नाग किन्नर आदि समस्त चराचर प्राणीमात्र को, अपने तपोबल के प्रभाव से एकत्रित किया है और महाराज राम ने आज्ञा दी है कि आज भगवान वाल्मीकि अपना बनाया नाटक अप्सराओं से खिलवायेंगे उसे देखने के लिये हमारा भी निमन्त्रण है, सो गंगा जी के किनारे रंगभूमि रचवाकर सब दर्शकों का यथोचित प्रबन्ध कर दो। हमने मनुष्य देवता और सब जीव-समूह को यथा योग्य स्थान में बैठा दिया, और—

जे नृप-धर्म के पालन में प्रजा-अनुरंजनता सों छये हैं।
जो सब भांति तपोवन के मुनि-धीर-बने जग धन्य भये हैं॥
श्री वाल्मीकि महाऋषि के कविता-गुन-गौरव-नेह मये हैं।
देखहु भारत-भूप सिरोमनि राम यहीं जुर आइ गये हैं॥१॥

[श्री राम का प्रवेश]

रा०—वत्स लक्ष्मण, दर्शक तो सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये न?

ल०—हाँजी, सब बैठ गये।

रा०—अच्छा तो इन प्यारे कुश लव को भी कुमार चन्द्रकेतु के बराबर स्थान मिलना चाहिए।

ल०—महाराज का स्नेह जानकर पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया गया है अब तो आप भी राजगद्दी पर विराजिये।

रा०—(बैठते हैं)

ल०—अच्छा भाई, अब अपना नाटक प्रारम्भ करो।

सूत्रधार—(सामने आकर)

महाशयगण, यथार्थवादी भगवान वाल्मीकि ऋषि सब चराचर प्राणीमात्र को आज्ञा देते हैं, कि हमने अपनी आर्ष-दृष्टि से देखकर अद्भुत करुणारस से पूर्ण यह जो पुण्य पवित्र नाट्य-प्रबन्ध आपके सामने उपस्थित किया है, उसका वृत्तान्त सब सच्चा और बड़े महत्व का है; इसलिए आप सब लोगों को उसे सावधान होकर देखना चाहिए।

रा०—बहुत ठीक कहा, ऋषि लोग ऐसे ही होते हैं इनके लिए केवल दिव्यदृष्टि से, क्या हम और क्या दूसरे सब धर्म प्रत्यक्ष ही के समान हैं। इन महात्मा का [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] किसी देश व किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

(बैठते हैं)

([illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है, इसलिए इसकी [illegible] के [illegible]

दुखी हूँ और अकेली निराश्रय जंगल में पड़ी हूँ।
मुझे घोर बाघ, भेड़िये खाने को दौड़ते हैं। हाय,
अब मैं अभागिनी क्या उपाय करूँ? कहाँ जाऊँ?
निराश हो गंगाजी में कूद पड़ती हूँ।)

ल०—हाय यह तो कुछ और ही बात निकली।

सू०—विश्वभरनि जो धरनि, तासु तनया, प्रिय प्यारी।
निरपराधिनी, जो वह कौं भूप राम निकारी॥
प्रसव-वेदन-विकल अवस सब नीर विसारति।
हाय हाय करि गंग माहिं अपने कौं डारति॥२॥

(निकलता है)

रा०—(घबड़ा कर) देवी देवी, तनिक ठहरो!

ल०—महाराज यह तो नाटक है नाटक।

रा०—हा देवी, दण्डक बनवास की प्यारी सखी, राम के कारण तुम्हारी यह दुर्दशा!!

ल०—आर्य! नाटक का अर्थ तो देखिये।

रा०—यह भी हम तो श्रम की छाती किये देखते ही हैं।

(पृथ्वी और गंगा एक एक बालक लिये सीता को सम्हालती दिखाई पड़ती हैं)

रा०—वत्स लक्ष्मण, जो कभी सुना न था सो सब आकर आज उपस्थित हुआ है। सम्हालो भैया, मैं मोहान्ध हुआ जाता हूँ।

दो० दे०—
गहि धीरज दोय सुता अपने, अब सोच क. मारी मरे जनि प्यारी।
विश्वास [illegible] जग में

[illegible] को जग कीन्ह पुनीत [illegible] ।
[illegible] रघुवंश [illegible] ॥४॥

[illegible]—[illegible] पुत्र [illegible] (मुक्ति होती है)
[illegible]—([illegible]) [illegible] भगवान के [illegible]
[illegible], रघुवंश के [illegible] और
[illegible] ([illegible]) [illegible], [illegible] हैं और
[illegible] के [illegible] कर रहे हैं ।

[illegible]

[illegible]

का बन्धन तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है, बेटी वैदेही और दे[illegible]
वसुन्धरा, धीरज धरो, अपने हृदय को सँभालो।

पृ०—देवी गंगा, सीता को जनकर कैसे धीरज धरूँ—
मोह भयो नहिं, जो गिनने कियो राक्षस के बहुकाल निवास
कैसे सहो यह जाय अनाथहु नाहिं जो दूसरो पै [illegible]।

गं०—या जग में विधना, सजनी, करती निर्दयीय [illegible] और।
सो [illegible] दुख देखे रहै, और नाहिं [illegible] सबै अब कोऊ॥

पृ०—ठीक कहती हो, सती पर कथा रामचन्द्र को यह उचित था[illegible]
हाय उन्होंने यह न सोचा कि—
भयो ब्याह [illegible] [illegible] में, बालपने के माहि।
धरनी-सुता अयोनिजा, [illegible] [illegible] नाहिं॥
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] के [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] में न [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] की, [illegible] न [illegible] [illegible]॥

सो:—हाय आर्यपुत्र की सुधि क्यों दिलाती हो।

पृ:—हा अब भी आर्यपुत्र तेरे कुछ लगते हैं ?

सी:—[लज्जा से आँसू भरकर] तो जैसा माँ कहें।

रा:—(अलग) भगवती वसुन्धरा ठीक ! मैं इसी योग्य हूँ !!

गं:—प्रसन्न हो, भूतधात्री, आप तो संसार की देह हो, फिर भी अज्ञान की भाँति अपने जमाता पर क्रोध करती हो।

देखिए:—

लोग लुगाइन में चरचा अपकीरति की अति फैलि रही है।
लंका में अग्नि परीच्छा भई कोउ मानत ताहि यहाँ न सही है॥
'राखे प्रजा अनुरञ्जन को धन' या रघुवंस ने टेक गही है।
ऐसी दसा में विचारे रघुपति कों करनी तब काह चही है॥ ६॥

ल:—देवताही प्राणियों के अन्तःकरण के मर्म को भली भाँति जान सकते हैं, और विशेषकर गंगादेवी; इस कारण भगवती आपको मेरा प्रणाम है।

रा:—सचमुच ही आपके अनुग्रह का प्रवाह महाराज भागीरथ के वंश में निरंतर बहता रहता है।

पृ:—देवी भागीरथी, मैं तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न ही हूँ परन्तु इस लड़की का असह्य दुःख देखकर छाती फटती है। मैं क्या नहीं जानती हूँ कि राम का प्रेम सीता पर कितना है ?

धाय-चबाइन के चहुँ ओरसों हैं वे सदा मन माहिं दुखारी।
जानि भली जिन देवसकोर को देवस राम सदा सिय प्यारी॥
जो अपनो मन राखि रहे, यह साधु सलौकिक धीरज ..
और प्रजा-कृत-पुण्य-प्रताप हैं, सकुल भूप सुमंगल

रा०—(आप ही आप) माता पिता लड़कों पर दया न करें तो कैसे काम चले।

सी०—(रोती हुई हाथ जोड़कर) मा, मुझे अपने में लीन करलो।

रा०—(आप ही आप) देखें और क्या कहें ?

ग०—नहीं बेटी ऐसा मत कहो, तुम सहस्र वर्ष तक अभी संसार में और रहो।

पृ०—बेटी अभी तो तुझे इन दोनों को पालना है।

सी०—मैं तो अनाथ हूँ फिर इनका कौन होगा।

रा०—रे वज्र-हृदय, अभीतक फटता नहीं ?

ग०—तुम तो बेटी, सनाथ हो, फिर अपने को अनाथ क्यों कहती हो ?

सी०—मैं अभागिनी हूँ, सनाथ किस प्रकार हो सकती हूँ।

दोनों दे०—जगत की जय मंगल-कारिणी,
फिरहु क्यों अपको अपमानती।
जिसके पास मिले सुत भ्रा कों,
बहुरि और हमार 'पवित्रता ॥८॥

ल०—(राम से) महाराज, सुनिये ये देवी क्या कह रही हैं ?

रा०—समाप सुन।

(आकाश में कल-कल शब्द होता है)

रा०—बात तो कोई बड़े आश्चर्य का है।

सी०—अरे आकाश क्यों चमक उठा है !

दो० दे०—ध्यान सिया—

जिन्हि पाइ सुरीति सुजान सों,
सुभग सुन्दर सींचित देह ने।
हरि हिये मनभावन रात को,
घर दिवारि स्वमित्र परस्पर।
समय दे नव ये मद मत्त हैं,
सरसि सुन्दर सों सुख-सर्जिते।
करि विविध महा मित्र तेज जो,
प्रगट बाढ़ बढ़े सब ही यहाँ ॥११॥

([illegible])

[illegible] है मुक्ते [illegible] मिले,
[illegible] मिले [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] है [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१२॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] की [illegible] में एक महान् अद्भुत और [illegible]
[illegible] होती है)

[illegible] — ([illegible]) [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ [illegible]

([illegible])

[[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]] ॥ [illegible]

[illegible] — [illegible] है [illegible] ([illegible])
[illegible] है ।

[illegible] और [illegible] का [illegible])

[illegible] — [illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ॥ [illegible]

:—[भय से राम अथवा राम के शरीर पर हाथ फेरती है]
सावधान हो ! आर्यपुत्र, सावधान हो !!

:—[आँखें खोलकर आनन्द से] क्यों, यह क्या है ?
[सीता को देख कुछ मुस्कराकर हर्ष और आनन्द से चकित]
अहा क्या है ? स्वप्न ? कि सचमुच हाँ यह देवी है ?
[फिर देखकर लाज से] क्या मेरी माता, भगवती अरुन्धती, शृङ्गी ऋषि और शान्ता समेत सब बड़े-बूढ़े प्रसन्न होते हैं ?

र:—वत्स ये देखो महाराज भगीरथ के कुल की देवता, सर्वदा अनुग्रहशील भगवती भागीरथी हैं।

[नेपथ्य में]

[जगत्प्रभु रामचन्द्र स्मरण करो, तुमने चित्र देखने के समय कहा था कि हे गङ्गा माता ! तुम बधू सीता पर सर्वदा अरुन्धती के समान अपनी स्नेहमयी दृष्टि रखना सो मैं आज अपने ऋण से उऋण होगई ।]

र:—और ये देखो, तुम्हारी सास वसुन्धरा हैं।

[फिर नेपथ्य में]

[आयुष्मन् तुमने सीता त्यागते समय कहा था कि भगवती वसुन्धरा तुम अपनी प्यारी बेटी जानकी को देखती रहना तुमको सौंपता हूँ सो तुम भूपति होने से मेरे स्वामी के समान और जमाता होने से मेरे पुत्र के समान हो इसलिए मैंने तुम्हारा कहना कर दिया ।]

रा:—तुम जैसे महा अपराधी पर देवियों ने कैसे कृपा की ? मैं आप दोनों को प्रणाम करता हूँ । (चरणों पर गिरते हैं)

[फिर नेपथ्य में]

[… चिरंजीवी प्यारे, हो। कुटुम्ब सुख भोग करो।]

[illegible]

[illegible] —[illegible], [illegible] किस प्रकार [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है । और [illegible]
[illegible] है । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है ।

[illegible] —[illegible]
[illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible] है

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] है ।

[illegible]

रा:—महारानी यह निर्लज्ज तुम्हारे चरणों पर गिरता है।

सी:—नाथ तुम्हारी विजय हो!

व:—भगवान वाल्मीकि, सीता के गर्भ से जो रामचन्द्रजी के लड़के कुश लव हैं उन्हें भी ले आइये।

[जाते हैं]

कु: और लव—अहा हमने ठीक पहिचाना था।

सी:—[आँखों में आँसू भरकर घबराई सी] कहाँ हैं मेरी प्यारी कुमारजोड़ी (कुश लव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश)

वा:—बेटा कुश लव, यह रघुपति तुम्हारे पिता हैं, यह लक्ष्मण तुम्हारे पिता के छोटे भाई हैं, यह सीता देवी तुम्हारी जननी तथा यह राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं

सी:—(हर्ष, करुणा, आश्चर्य से देखकर) क्या यहाँ तात जनक भी हैं।

कु: ल:—हा तात, हा अम्ब, हा नाना!

रा: ल:—(हर्ष से कुश लव को गले लगा के) सौभाग्य से तुम दोनों बड़े आनन्द से मिले हो

सी:—प्यारे मेरे दोनों लाल, आज तुम्हारा [illegible] हुआ है, प्यारो बेटा मेरी छाती से [illegible] (कुश लव को छाती से लगाकर रोती है)

कु० ल:—(मिलकर) हम दोनों धन्य हैं।

सी:—(वाल्मीकि की ओर) भगवान तुम्हारे [illegible]

रा:—ऐसी ही महाकुल में प्रवेश होने दीजिए—

सी:—माता! [illegible]

शब्दार्थ-प्रदीप

(इसमें कुछ असाधारण शब्द [illegible] पद्य के उन शब्दों का [illegible] तथा अर्थबोध कराया गया है जो प्रायः [illegible] की बोली में प्रचलित हैं।)

पृष्ठ १—[illegible] = [illegible] कवि वाल्मीकि। [illegible] = राम के लिए [illegible] सभी कालों में रहने वाले [illegible]। [illegible] = जो मद मनुष्य में नहीं पाये केवल [illegible] में वर्तमान होता है। [illegible] = [illegible], [illegible], [illegible]।

पृष्ठ २—[illegible] = [illegible] की मंगल के लिए [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible]।

पृष्ठ ३—[illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible]।

पृष्ठ ४—[illegible] = [illegible]। [illegible] = दिवस (दिन)। [illegible] = [illegible]।

अंक १

पृष्ठ ७—[illegible] = [illegible] [illegible] = [illegible] वाले [illegible]।

पृष्ठ ८—[illegible] = एक [illegible] [illegible] है, [illegible] (हि.) है।

पृष्ठ ९—[illegible] = [illegible] है।

पृष्ठ [illegible]—[illegible] = [illegible]।

पृष्ठ [illegible]—[illegible] = [illegible] [illegible] = [illegible]

पृष्ठ १०—[illegible] ([illegible]) एक [illegible] जिसके [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] = [illegible]।

पृष्ठ २२—बुरी पयाउ = निन्दा । अतुल = अतोल । कूकर = कुत्ता । धिक्कार = लानत देना ।

पृष्ठ २३—निरत = लगा हुआ । परतीति = प्रतीत । निठुर = निर्दय । मोदप्रद = आनन्द पैदा करने वाली । सनेह = (स्नेह) । दई = दैव ।

पृष्ठ २४—श्रीखण्ड = चन्दन । वृथा = व्यर्थ ।

पृष्ठ २५—हिय = हृदय ।

पृष्ठ २७—काज = कार्य । अष्टयाम = अष्टयाम । असीस = आशीष ।

अंक २

पृष्ठ २८—अर्घ = षोडशोपचार में से एक; जल, दूध, दही, सरसों, कुशाग्र, तंडुल और जौ मिलाकर देवता को देना । छाहरि में बिरमाउ = छाँह में ठहरो । फलाहर = फलाहार । काऊ = किसी दूसरे पर ।

पृष्ठ २९—प्रकृति = स्वभाव । अगार पिछार = आगे पीछे । बिजै = विजय । निवसत = रहते हैं । जगमधि = जग में । पारावार = पारावार ।

पृष्ठ ३०—दौरत कबभुा = बालपन । अर्पन किये = दे दिये । मुग्ध = मोहित ।

पृष्ठ ३१—बिचरत = डोलते हैं । बिना आयास = अनायास । देख = देखा । अनुष्टुप = = = के विराम से २४ अक्षर का संस्कृत छंद । वाग्देवी = सरस्वती, वाणी । विहरत = विहार करते हैं । स्वच्छंद = स्वतन्त्र ।

पृष्ठ ३२—[illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = दिखता, [illegible] । [illegible] = [illegible] (छवि) का [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] ।

पृष्ठ ३४—भूमी = (सूर्य) स्वामी। हियो = हृदय। अग = आग। अभिमंत्रित = मन्त्रों द्वारा पवित्र किया हुआ।

पृष्ठ ३५—चक्रासमृत्यु = [illegible] का मरना। खरारी = राम, खर नाम के राक्षस का बैरी। कपोत-पुंज = कबूतरों का समूह।

पृष्ठ ३६—लौहदि = [illegible]। गड्डवान = [illegible], कनारी। घमीते = धूप के मारे हुए। कूलद्रुम = किनारे के पेड़। स्यामल = स्निग्ध छाने को। [illegible] = नमस्कार। निरस = निर्जन। [illegible] = विदेश।

पृष्ठ ३७—[illegible] = बनाना है। [illegible] = संसार-सागर से पार करने वाली। [illegible] = प्रभु चरणों का [illegible]। [illegible] = स्पष्ट। [illegible] = निरन्तर। [illegible] = आश्रय देने वाले। [illegible] = [illegible]।

पृष्ठ ३८—[illegible] = [illegible]। [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] [illegible] करते हुए। [illegible] = [illegible] [illegible]

पृष्ठ [illegible] = [illegible] का [illegible] है [illegible]

[illegible]

पृष्ठ [illegible]

पृष्ठ [illegible]

[illegible] । [illegible] = नदी का स्रोत । [illegible] = [illegible] ([illegible]) । [illegible] दे [illegible] दिये हैं ।

पृष्ठ ४९—[illegible] = [illegible] ।

पृष्ठ ५१—[illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] का [illegible] । [illegible] = [illegible] कर ।

पृष्ठ ५३—[illegible] = [illegible] हैं । [illegible] = ऊँची । [illegible] = [illegible] ।

अंक ३

पृष्ठ ५४—[illegible] = [illegible] को [illegible] हैं [illegible] । [illegible] हैं [illegible] ।

पृष्ठ ५८—[illegible] = [illegible] के [illegible] से [illegible] की हुई । [illegible] = [illegible] का [illegible] ।

पृष्ठ ६०—[illegible] = [illegible] । [illegible] हैं । [illegible] = [illegible] के [illegible] हुई । [illegible] = [illegible] हुई । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] के [illegible] । [illegible] = [illegible] के [illegible] । [illegible] = [illegible] है

पृष्ठ ६१—[illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible]

पृष्ठ ६२—[illegible] = [illegible]

पृष्ठ ६३—[illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible]

पृष्ठ ६४—[illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] हुई ।

पृष्ठ १०१—कसौटी = खोटा खरा सोना देखने का पत्थर ।

पृष्ठ १०२—पाक-शासन = इन्द्र । पदाति = पैदल । चौंधियात = चकाचौंध होता है ।

पृष्ठ १०३—रसातल-गारभगत-कुञ्जनि = पृथ्वी के भीतर गुफाओं में । पुञ्जित-तिमिर = इकट्ठा किया हुआ अँधेरा । पिङ्गल = पीला । पीतर-तपन = तपी हुई पीतल के समान ।

पृष्ठ १०४—कपिश रङ्ग = काला रङ्ग । धाराधर = बादल । हृताश्व = दश के मामाला । उमगे = पैदा हुए ।

पृष्ठ १०५—मुख मोरत—मुँह मोड़ता है ।

पृष्ठ १०६—अनुमोदन = समर्थन करना ।

पृष्ठ १०७—मरजाद = मर्यादा, सीमा । द्युति दीन = भद्दा ।

पृष्ठ १०८—ककुत्स्थ = इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा । सविता = सूर्य ।

पृष्ठ ११०—दाप = दर्प, अभिमान । लुंज = हाथ पैर विहीन । औनी = सुन्दर । कामदुहा = कामधेनु । आर्ष = ऋषि प्रणीत, वैदिक । परख = परीक्षा ।

पृष्ठ ११२—सुन्द-तिय = ताड़का । बालिनिधन = बालि के वध में । कौशल = कोख से पैदा । चिहुर = चोटी । तम ओप वारे = तीव्र आभा वाले ।

अंक ३

पृष्ठ ११३—कलित = शब्द करता हुआ । किंकिनी = करधनी । सुख = हँसी । मधि = में ।

पृष्ठ ११४—पिङ्गल-वर्ण = पीला रंग। ज्योतिर्मय = प्रकाशित। किरनें = (किरणें)। आग्नेयास्त्र = जिसके चलाने से अग्निवर्षा होती है। मर्दं = नष्ट

पृष्ठ ११५—आनन्दोल्लासित = आनन्द में मग्न। जीवन-मूरि = संजीवनी नाम की बूटी।

पृष्ठ ११६—उगत = उगते ही।

पृष्ठ ११७—परसाउ = स्पर्श कराओ। प्रशस्त = उत्कृष्ट। अँगर्यो = अंगीकार लिया।

पृष्ठ ११८—चन्द्रकान्त मनी = चन्द्रकान्त मणि।

पृष्ठ ११९—गर्भदल अनुहार = गर्भ के पत्तों के अनुसार। परस = स्पर्श। अनन्यार = अनूप। मनंद = सुन्दर।

पृष्ठ १२०—प्रकृति-जन्य सुभाव = स्वाभाविक। अविरत = निरंतर। सूर्यमनि = सूर्यकान्तमणि।

पृष्ठ १२१—अघोर = बहुत। भेव = भेद, रहस्य। अधिराज = प्रधान राजा, चक्रवर्ती। इन्द्रमनी = नीलम।

पृष्ठ १२२—निनाद = शब्द। दिव्यायुध उग्र = वह बाण जो देवताओं से प्राप्त हों और कठोर हों। अचला = पृथ्वी। वेद रत्नाकर = वेदों का समुद्र।

पृष्ठ १२३—पुण्यदर्शन = जिनका दर्शन पुण्य से मिलता है या जिनके दर्शन से पुण्य होता है

पृष्ठ १२४—अवलम्बन = सहारा। रम्य = सुन्दर।

पृष्ठ १२५—विलच्छन = विचित्र (विलक्षण)। रमनाई = शोभा। अडोल = स्थिर।